यारों के यार

तिन-पहाड़

पारैं कै पार
तिन-पहाड़

यारों के यार

•

तिन-पहाड़

•

यारों के यार

बड़े बाबू किसी पुरानी फाइल में खोए बैठे थे कि ऐन चार-चालीस पर चपरासी ने आ साहब को सलाम दिया।

बड़े बाबू ने चपरासी के चेहरे से हाकिम की मिज़ाजी हरारत भाँपने की कोशिश की, फिर हाथ का कलम कलमदान में टिकाया, रूमाल से चश्मा पोंछा और साहब के हुजूर में पेशी के लिए चल दिए। बरामदे में ज़रा आदतन हिचकिचाए, गला खँखारा कि साहब के चपरासी ने बन्दगी बजा चिक उठा दी।

"बैठिए भवानी बाबू," साहब फ़ाइल पर आँखें गड़ाए रहे।

भवानी बाबू ने कुरसी खींचते-खींचते एक छिपी नजर फ़ाइल पर डाली, फिर तुरंत ही दीवार पर टँगे कैलेण्डर पर टिका दी। मन-ही-मन आज और कल की तारीख में साहब को पेश की फ़ाइलों के मज़मून दोहराए, एक-एक कर उनकी नाकाबन्दी ताज़ा की और सुर्खरू हो हाकिम के हुक्म का इन्तज़ार करने लगे।

साहब ने फ़ाइलों के ढेर पर दस्तखत करना जारी रखा। आखिरी फ़ाइल का फीता खोला तो बड़े बाबू को मुखातिब हुए, "भवानी बाबू, आपकी तो काफ़ी छुट्टी बाकी होंगी, आप छुट्टी पर जाना चाहेंगे?"

साहब की आवाज़ पर भवानी बाबू कुरसी पर उचक बैठे थे, मज़मून सुन सकते में आ गए।

साहब ने अगले जुमले में सब साफ़ कर दिया, "आपके हक़ में यही अच्छा होगा भवानी बाबू!"

बड़े बाबू ने किसी तरह हलक की फाँस निगली और सहमे गले से पूछा, "कुछ खता हुई हुज़ूर?"

साहब ने खुर्दबीनी निगाह भवानी बाबू के चेहरे पर गड़ा दी और अफ़सराना अन्दाज़ में बोले, "पड़ताल के लिए जाँच-कमेटी बैठने वाली है, आपको फ़ौरन मुअत्तिल न कर, छुट्टी की छूट दे महकमे ने आपके साथ रिआयत ही बरती है।"

उलटी हवा की मार से बड़े बाबू के दिलो-दिमाग की सब खिड़कियाँ एक साथ खुल गईं। किसी तरह अपने को सँभाल हाकिम के आगे सिर झुकाया, "महकमा जो ठीक समझे हुज़ूर—इस नाचीज़ को तो आप ही का भरोसा है।"

बड़े बाबू की ज़मानेसाज़ी से साहब की पेशानी पर तेवर

उमर आए। कुछ कहना ही चाहते थे कि घंटी बज उठी, "कहिये, किसे चाहते हैं ? भवानीशंकर ?···भवानी बाबू, आपका फोन है।"

भवानी बाबू कुरसी से उठे और हाथ बढ़ा साहब से फोन ले लिया, "जी बोल रहा हूँ। कौन बन्ने, क्या कहा, मुन्ने के सिर में चोट आई है ? होश में नहीं ? फ़ौरन अस्पताल ले जाओ—हाँ···हाँ···हाँ···पहुँचता हूँ।"

बड़े बाबू ने चोट खाई निगाह से साहब की ओर देखा और रिसीवर नीचे रख हस्बेमामूल हाकिम का हुक्म बजा लाने के अन्दाज़ में कहा, "मेरी छुट्टी का सामान तो बन गया बन्दा-परवर, लड़के का सिर फटा है—इजाज़त हो तो चलूँ ?"

साहब ने मौके की नज़ाकत पहचान हमदर्दी जताने में हर्ज न समझा, "दफ़्तर के झगड़े-झमेले यहीं छोड़ बच्चे की देखभाल कीजिए भवानी बाबू···:"

भवानी बाबू चलने को हुए कि एकाएक कुछ याद हो आया, "सर, तिमाही स्टेटमेंट कल जाने को है, कहें तो निबटाता जाऊँ ?"

साहब दिल-ही-दिल चौकस हुए। ज़ाहिरा कहा, "स्टेटमेंट की फ़ाइल शर्मा को सँभलवा जाइये और बाकी भारद्वाज को सौंप दीजिये।"

खतरे की तेग गले पर झूलती देख भवानी बाबू ने उलझी पेचक का सिरा निकालना मुनासिब न समझा और मन-ही-मन अपने बिगड़ते केस की फ़ाइल पेंडिंग में डाल दी। इजाज़त के लिए टुक कुरसी की ओर सिर झुकाया और चिक उठा बाहर हो गए।

सीट पर पहुंचे तो दर्जनों निगाहें एक साथ मेज़ की ओर ठों और वड़े बाबू को इत्मीनान से फ़ाइलों में मसरूफ़ होते ख हैरत में आ गईं। हाकिम के रूबरू होकर भी यह ठस्सा !

भवानी वाबू ने चपरासी को घंटी दी, पानी पिया और मसरूफियत से फ़ाइलों के नाम, नम्बर और मज़मून चौकस करते-करते कुछ ज़रूरी नोट ले लिए।

शर्मा ने एक खुफिया निगाह भारद्वाज पर डाली और होंठों पर की काली मुस्कराहट पर सफेद सिगरेट टूंग ली। दो-चार कश लिए, चुटकी वजाकर राख झाड़ी और पुराने खिलाड़ियों की तरह बड़े बाबू के पास आ कहा, "भवानी वाबू, कोई ज़रूरी फ़ाइल खोजते हैं क्या ? मैं मदद करूँ ?"

भवानी वाबू जवान में कुछ बोले नहीं—चश्मे वाली आँखें पहले की तरह ही फ़ाइल पर दौड़ाते रहे।

शर्मा ने अचानक उठ आई खाँसी को रोकते-रोकते अपने हमजोलियों को आँख मारी कि सक्सेना की कनकव्वी आँख ने वीच में ही झपट ली।

एकाएक बड़े बाबू ने अपनी मँजी हुई रौबीली आवाज़ सब इशारेबाज़ियों को खत्म कर दिया, "शर्मा, लो सँभालो, स्टेटमैंट की फ़ाइल है, याद रहे कल आख़िरी तारीख है, इ जाने की। और हाँ, भारद्वाज, फ़र्नीचर परचेज़ की फ़ाइल साहब को सवमिट होगी।"

पेशतर कि भारद्वाज और शर्मा कोई हुज्जत करें, वड़े ने फोन उठा लिया, "सर, आपके कहे मुताबिक सब-कुछ दिया है, हाँ टैण्डर्स की फ़ाइल आपको भिजवाए देता हाँ…जी हाँ…जा ही रहा हूँ साहब !"

मेजों के आर-पार लग रही अटकलों को नजर-अन्दाज कर भवानी वाबू ने मेज़ का सामान दराज में बन्द किया और चपरासी को घंटी दे दी, "जुगलाल, ये फ़ाइलें साहब के यहाँ जाएँगी, डाक तो कोई वाकी नहीं ?"

"जी नहीं साहब !"

भवानी बाबू की नजर ज़रा-सी देर को जुगलाल के चेहरे पर ठहरी, फिर कोने में बैठे डिस्पैचर की मेज पर गुम हो गई।

टाइपिस्ट ने बड़े बाबू की मेज़ से लाल बस्ता उठते देखा तो फुर्ती से कुछ कागज़ात भवानी बाबू के आगे कर दिये।

भवानी बाबू ने चाहा कि इन्कार कर दें, फिर न जाने क्या सोच उचटती-सी नज़र से पन्ने पलटने लगे। किसी एक 'कान्फ़ीडेन्शल' पर आँख अटकी ही थी कि शर्मा का ऊँचा कहकहा तीर की तरह दिल पर आ लगा।

बड़े बाबू ने कागज़ों का जाँचना जारी रखा, कुछ गलतियाँ सही की, टाइपिस्ट को पन्ने लौटाते-लौटाते एक नजर आंच पर डाली, एक घड़ी पर और कुरसी से उठ बैठे।

दाएँ-बाएँ देखे विना जल्दी-जल्दी बरामदा पार किया। पाँव बजरी पर पड़ते ही जूते चरमराए तो घबराहट से दिल धड़कने लगा। क्या खबर, नसीबा, उन्हें यहाँ बाइज्ज़त लौटने दे न दे !

"भवानी बाबू···भवानी बाबू···!"

अपना नाम सुन कुछ ऐसी उलझन हुई कि दफ्तर-भर की नजरों से कहीं दूर निकल जाएँ। यदुवंशी को अपनी ओर आते देखा तो जान लिया कि उनके पीछे जो चर्चा होनी थी, हो चुकी।

"वड़े वावू, आपका फोन है।"

भवानी वावू की आँखों में बेटे का मासूम चेहरा तड़पने लगा। वच्चा अस्पताल में पड़ा है और वह दफ्तर के झमेलों में वक्त खोया किए। बदहवासी की हालत में कमरे की ओर दौड़े। लपककर फोन उठाया, "कौन, वन्ने ?...हाँ...हाँ—ऊँचे बोलो बेटे—क्या कहा ?" जवाब में बेटे ने जो कहा, सुनकर भवानी वावू पत्थर हो गए। टेलीफोन का चोंगा हाथ में ही लटका रहा और आँखें मेज़ पर थिर हो गईं।

कुछ अनहोनी हुई जान सक्सेना ने कंधे से थाम वड़े बाबू को कुरसी पर विठा दिया तो हैरत से लोग बुत बने भवानी वावू की ओर ताकते रह गए।

किसी ने यदुवंशी को टोहा, "पूछो तो सही, फोन क्या घर से था...?"

शर्मा, भारद्वाज अपने चेले-चाँटों के संग किसी और ही फ़िराक में थे। अजीव मसखरेपन से वड़े वावू को घूरते रहे।

वख्शी ने शर्मा के कान में फुसफुसा दिया, "नजूम के हिसाव से तो गुड्डी कटी ही समझो।"

शर्मा ने सिगरेट सुलगाई और मौका मौजूं जान अपनी तुरप फेंक दी, "यार, भवानी वावू की इस हालत का क्या सबब ? कोई मुहरवन्द फ़रमान तो नहीं मिल गया इन्हें ?"

चन्द भले लोगों ने हिक़ारत से जात-भाइयों की इस टोली को देखा, पर कुछ भी कहना खतरे से खाली न समझ चुप बने रहे।

एकाएक सूरी ने पीछे से आ शर्मा को झँझोड़ दिया, "लाल-बेगिया टुच्चा साला वाज नहीं आएगा। मालूम भी है, वड़े वावू

का लड़का जाता रहा।"

अजहद पछतावे और शरमिन्दगी से शर्मा ने सिगरेट नीचे फेंक पांव से मसल दी कि एक दबी-दबी दर्दनाक सिसकी भवानी बाबू के गले से निकली और कमरे में फैल गई।

कुछ लोग खड़े-खड़े एक-दूसरे का मुंह ताकते रहे, कुछ बड़े बाबू के साथ हुई तकदीर की इस साजिश पर हाथ मलते रहे।

मायुर ने सूरी से मशवरा किया, टैक्सी के लिए फोन मिलाया और साथियों को बड़े बाबू के गम में शरीक होने का इशारा दे दिया।

हॉर्न की आवाज़ पर मायुर भवानी बाबू के पास आए और कंधे पर हाथ रखकर कहा, "हौसला करिए बड़े बाबू···" और सहारा दे बाहर लिवा ले चले।

सूरी, शर्मा और भारद्वाज बरामदे में पीछे-पीछे चले आते थे कि साहब अपने कमरे से निकले और इस मातमी जुलूस को नज़र-अन्दाज़ कर सीधे अपनी कार की ओर बढ गए।

सूरी ने एक नज़र साहब की कार पर डाली और टैक्सी में बैठते-बैठते एक फटकार फेंक दी, "चूतिया, साला, किस्तों की कार में लट्टू बना घूमता है, बहनचोद! किसी दिन हराम का चूना झड़ने पर आ गया तो सारी चिनाई धरी रह जाएगी।"

बड़े बाबू ने सिर उठा अजीब लुटी-लुटी हारी नज़र से सूरी की ओर देखा और देखते ही आँसू टपकने लगे। जितनी बार रूमाल से आँखें पोंछते, बेटे के लहू-लुहान सिर पर किसी [illegible] फ़ाइल का पन्ना चिपका दीखता।

टैक्सी क्वार्टर के सामने रुकी। भवानी बाबू [illegible] अपने को···समेट नीचे उतरे। शर्मा को भाड़ा चुकाते [illegible]

हाथ से रोक दिया। खुद ही ड्राइवर को निबटा, लमहा-भर घर की ओर मुँह कर ठिठके रहे, फिर थके-हारे कदमों से अन्दर जा दाखिल हुए।

मुन्नन को गोद में डाले रोती-बिलखती मालती को देखा तो कलेजा मुँह को आ गया। झुककर बेटे का मरा मुख देखा, खून से भरा लथपथ नन्हा मासूम सिर देखा—आखिरी प्यार देने को बच्चे के माथे पर हाथ रखा तो फूट-फूटकर रो दिए।

नन्हे-मुन्ने को आँखों से ओझल कर भवानी बाबू उस रात खाली हाथ घर लौटे, तो मातम के सन्नाटे में डूबा घर, घर-सा न लगता था। पाँव आप-ही-आप बरामदे के बाहर रुक गए। मुन्नन अभी दौड़े आएँगे और बाबूजी से आ लिपटेंगे।

"बाबूजी, हमें साइकिल चाहिए—ले देंगे न ?"

"क्यों नहीं···क्यों नहीं बेटे, अगले महीने ज़रूर दिलवाएँगे।"

किसे मालूम था, साइकिल आने से पहले बेटे की रुखसत की घड़ी आन पहुँचेगी!

उस रात घर की मनहूस खामोशी में मुन्नन की भोली-भाली सूरत कभी दादी की झोली में आ दुबकती, कभी माँ की गोद में और कभी बाबूजी के सिरहाने। ठुमक-ठुमक चलता कोई मीठा सपना आँखों पर झुकता और पहचान करते ही नदी की धारा में ओझल हो जाता—छप्प···छप्प···छप्प···।

जमुना की रेती में मुन्नन को ढूंढ़ते फिरते भवानी बाबू किसी की कड़कती आवाज़ सुन सहमे, "भवानी बाबू, यहाँ-वहाँ क्या ताकते हैं ? बेकार की बहानेबाज़ी छोड़िये और तुरत जाकर दफ्तर से अपना 'पर्सनल फ़ाइल' निकाल लाइए।" घबराहट में भवानी बाबू कुछ समझ नहीं पाए, बेबसी से साहब की ओर

देखा और घबराहट में जूते हाथ में ले दफ्तर की ओर दौड़ पड़े।

सामने पुल पर से जाती गाड़ी को हाथ हिला-हिला रोकने की कोशिश की कि अचानक किसी ने चलती गाड़ी में से मुँह बाहर निकाला और एक फ़ाइल भवानी बाबू की ओर उछाल दी, "दादा गुरु, इसमें अवस्थी का रिकार्ड सँभालकर रख लो, काम आएगा···।"

बड़े बाबू ने लपककर फ़ाइल उठा ली। चौकन्ने हो इधर-उधर देखा और फ़ाइल बगल में दबा दफ्तर की राह पकड़ ली।

दफ्तर पहुँच अपनी मेज़ की दराज खोली और पूरी चौकसी से फ़ाइल ताले में बन्द कर दी। कुरसी पर बैठने को ही थे कि किसी की आवाज सुनकर सहम गए।

"बाबूजी···बाबूजी···"

आँख खुलते ही गुड़िया के हाथ में चाय का प्याला देखा तो पाया वह दफ्तर में नहीं अपने घर में हैं। हाथ बढा प्याला थामा और लिहाफ सहेज बिटिया को पास बिठा लिया। गुड़िया कुछ देर बाबूजी की ओर देखती रही, फिर हौले से पूछा, "बाबूजी, मुन्नन भैये के कपड़े क्या होंगे?"

भवानी बाबू परेशानी से कभी प्याले की ओर देखा किए, कभी बिटिया की ओर, फिर बच्ची के सिर पर हाथ रख समझाया, "मुन्नन तो भगवानजी के घर गए बिटिया, कपड़ों की क्या सोच···?"

"बाबूजी, नन्हे तो कहते है भगवानजी एक और भैया भेजेंगे।"

"जाओ बिटिया, जाकर अम्माँ का हाथ बँटाओ।"

बच्ची के भोलेपन से दिल भर आया। सिरहाने पर सिर रखते ही कुछ देर पहले वाला ख्वाब आँखों के आगे घिर आया। फ़िक्र और घबराहट से तबीयत दहल गई।

'इंक्वायरी' का क्या ठीक ! किस जाल की गाँठ किस जोड़ से छिटक जाए और किसकी छुरी किसकी गर्दन पर चल जाए ! पवनपुत्र हनुमान का ध्यान कर विनती की, "गरीबनवाज़, आप अंगुल पर पहाड़ उठा सकते हैं, इस ग़रीब को भी कष्ट से उबारिए।"

भवानी बाबू ने आँखें खोलीं तो गहरा सकून दिल में पाया। सामने से मानो अँधेरे का परदा छँट गया और जो दीख पड़ा वह बिलकुल साफ़ था।

"जब तक आर्डर नहीं होता उन्हें अपनी कुरसी पर टिके रहना है।"

लिहाफ़ उतार बिस्तर छोड़ दिया और घड़ी देख दफ्तर की तैयारी में जा लगे। नहाकर निकले तो अम्माँ के पास बैठी मालती उन्हें ग़मज़दा परछाईं-सी दीख पड़ी। "इस पगली को समझाओ अम्माँ, जिस बात पर इन्सान का बस नहीं, उसकी खातिर कितना दुःख मनायेगी ! मुझे ही देखो, इधर मुन्नन गए, उधर दफ्तर में काम का पहाड़ टूट पड़ा। तबीयत नहीं, पर क्या करूँ, छाती पर पत्थर रखे चला जा रहा हूँ।"

"बेटे, आज तो छुट्टी करते।"

भवानी बाबू बिना कुछ कहे कमरे की ओर बढ़ गए। ठाकुरजी के आगे एक बार और माथा नवाया और हनुमान-चालीसा का पाठ कर कपड़े पहन लिए। बटुआ खोल रेज़गारी अलग की और कोट की जेब में अपना कलम लगाते-लगाते मानो

जिरह-वस्तर पहन लिया। "हिम्मत से काम लो भवानी, तुम्हारी आजमाइश का वक्त है।"

भाभी के कहे रमाशंकर अन्दर आए तो दादा को तैयार देख कुछ भी कहने की हिम्मत न हुई। दवी जवान से इतना ही कहा, "दादा, छुट्टी की अर्जी देनी हो तो रास्ते में पहुँचाता जाऊँ?"

छुट्टी के नाम से भवानी बाबू का दिल दहल गया, पर कुछ बोले नहीं, चुपचाप चारपाई के पैताने पाँव टिका तसमे बाँधने लगे।

एकाएक जैसे कुछ याद हो आया। "बिट्टन, तुम्हारे सुपरिंटेण्डेण्ट तबदील होकर किस महकमे में गए हैं?"

"कौन दादा! रंगबिहारी? एण्टीकरप्शन में अण्डर-सेक्रेटरी हो गए हैं।"

एक लपक रमाशंकर के चेहरे से उठ भवानी बाबू की आँखों में कौंध गई।

"रंगबिहारी को तुम कितना जानते हो, बिट्टन?"

रमाशंकर पहले चौकन्ने हुए, फिर दादा की ओर भरपूर देखा, "उसका लड़का तो अपना बड़ा यार है दादा!"

रमाशंकर की आवाज के पुख्तापन ने भवानी बाबू के आगे जैसे किसी किले का सदर फाटक खोल दिया। "बिट्टन, मेरी हाजिरी तो आज जरूरी है दफ्तर में, तुम्हारी कोई 'कैजुअल' बाकी हो तो छुट्टी कर डालो।"

ठीक नौ-दस पर भवानी बाबू बाहर निकले। बजरी के साथ-साथ लगी क्वार्टरों की लम्बी कतार आज उन्हें बदरंग उदासी से पुती मालूम हुई। कल तक मुन्नन इसी घास में खेला करते

थे—सब-कुछ है, सिर्फ वही नहीं।

वस-स्टाप पर रोज़ के जाने-पहचाने चेहरों में से कोई न दीखा तो भवानी वावू पटरी-पटरी अगले स्टाप की ओर चल दिये। आँखों के आगे नौकरी के पहले दिन से लेकर आज तक का ज़माना गुज़र गया। पहली वार जव उन्हें टाइपिस्ट की सीट दी गई थी तो उन्हें नौकरी नहीं मानो कोई छोटी-मोटी रियासत ही मिल गई थी। वड़े दादा ने उन्हें एक पाकेट डिक्शनरी ला दी थी, "देखो भवानी, किसी भी लफ़्ज़ का शक हो तो डिक्शनरी से सही करने में कभी कोताही न करो। हमेशा याद रहे, सरकारी कागज़ पर दस्तख़त कर देने पर उसकी ज़िम्मेदारी और जवाव-देही तुम्हारी होगी, किसी और की नहीं।"

दादा की उस नसीहत को तो भवानी वावू ने गुरु-मंत्र की तरह याद रखा। मेहनत और ख़वरदारी से सैकड़ों फ़ाइलें 'डील' कीं और क़ावलियत से भुगता दीं। आज इतने सालों वाद यह मुसीवत न जाने कहाँ से वरपा हो गई।

नम्वर देख भवानी वावू वस में चढ़े, कण्डक्टर से टिकट लिया और खिड़की से वाहर देखते-देखते अपने छोटे-वड़े रिश्ते-दारों की फ़हरिस्त ताज़ा करने लगे।

दादा के दामाद : कुँवर नारायण—महकमा फ़ाइनेंस के हैड-क्लर्क
मौसेरे भाई : छैलविहारी—महकमा सप्लाई में सुपरिंटेंडेंट
चचेरे भाई : आनन्दशंकर—पी० डव्ल्यू० डी० में ओवरसियर
चाची के भाई : प्रेमलाल—डिप्टी मिनिस्टर के पी० ए०
मालती के मौसा : अटलविहारी—इन्डस्ट्रीज़ में अकाउंट्स-ऑफ़िसर

मालती के ताऊ : बाँकेबिहारी—एक्साइज़ में सुपरिंटेंडेंट

बड़े बहनोई : परमात्मास्वरूप—चीफ़ सैनेटरी इन्स्पैक्टर, सिपल कारपोरेशन

मँझली बूआ के देवर : युवराज बहादुर—मुन्सिफ़ जज

बड़े मामा : सरदार बहादुर—स्टेट बैंक के कैशियर

बड़े मामा के दामाद : आकाशलाल—होम-मिनिस्ट्री में सेक्रेटरी

छोटे भाई रमाशंकर के साढ़ू : राजनारायण—महकमा ट्रान्सपोर्ट में इन्चार्ज

अपनी बिरादरी के बाबू शिवशंकर—मेम्बर पार्लियामेण्ट

इनके अलावा अपने यार-दोस्तों के महकमे, डैजिगनेशन, पोज़ीशन और रसूख़ के चीदा-चीदा डिटेल्स दिमाग़ी ख़ाके में भरते चले गए कि दफ़्तर के स्टाप पर कण्डक्टर ने घंटी बजा दी।

रोज़ से करीब पन्द्रह मिनट पहले भवानी बाबू दफ़्तर में दाख़िल हुए। हाज़िरी के रजिस्टर में नाम, वक्त दर्ज किया तो ऐसे लगा जैसे किसी बहुत मुश्किल काम को सरअंजाम दिया हो। अलमारी खोल फ़ाइलों की पड़ताल शुरू की तो कई 'नोटिंग-पोरशन' पढ़ डाले। दिमाग पर सुबह वाले ख्वाब का धुँधला-सा अक्स अब भी बाकी था। जिस किसी फ़ाइल को खोलते जमुना किनारे वाला अवस्थी का रिकार्ड आँखों में तिर जाता।

दस बजते-न-बजते ब्रांच के हैड क्लर्क को हमेशा की तरह कुरसी पर तैनात पाया तो रात की हमदर्दी के बावजूद झुंझलाकर रह गए। बन्दगी बजा हाज़िरी भरी और अपनी

पर दफ्तर खोल दिये।

सिगरेट-पान की छोटी-सी मजलिस के बाद शर्मा और बख्शी खिरामा-खिरामा कैन्टीन से लौटे तो कुरसी पर भवानी बाबू को जमे देखा और हाजिरी रजिस्टर में नाम-वक्त दर्ज कर दिया।

बड़े बाबू अहलकारी अन्दाज़ में आँख उठाये बिना रोज की-सी मुस्तैदी और मसरूफियत से डाक मार्क करते रहे। चश्मे वाली आँखें कागजों पर जमी रहीं और हैडक्लर्की की तीसरी आँख ब्रांच-भर की हरकतों को 'वाच' करती रही।

ठीक ग्यारह-बीस पर फ़ाइलों का पुलिन्दा उठाया और रोज की तरह साहब के कमरे की ओर बढ़ गए।

बड़े बाबू के जाते ही शर्मा और बख्शी ही-ही करके हँस दिए। "क्या क़ायम-मिजाज पाया है—कल बेटा गया और आज हजरत हाजिर! पूछिये साहब, छुट्टी कर लेने से क्या कुरसी लुटी जाती थी!"

बख्शी ने बड़े बाबू के चम्मचों पर नजर मारी और चुटकी बजा संजीदगी से कहा, "खिसक गई यार, अब क्या रखा है!"

सक्सेना ने शरारती नजरों से देखा और सिगरेट के छल्लों में मुस्कराता रहा।

भारद्वाज ने मनसुखानी को आवाज दी, "डूबने का दूसरा नाम तैराकी है मेरे यार!"

सूरी ने कोई पुरानी सिरदर्दी वाली फ़ाइल खोली ही थी कि भारद्वाज की आवाज सुन फट पड़ा—"बहनचोद फतूरिया साला झाँसापट्टी से बाज नहीं आता। जब देखो बैठे-बैठे लूती लगाता है। बहनचोद किसी दिन पासा पलट गया तो रोएगा

बाप के सालों को।"

बख्शी ने जल-भुनकर हाथ की सिगरेट दूर फेंक दी और जहरीली नज़र से सूरी को तरेरा, "बड़े भाई, तुम्हारी सीनियोरिटी का चक्कर क्या चला साला, दिमाग ही पटरी से उतर गया।"

सूरी ने हिकारत से बड़ी-सी थूक खिड़की से बाहर दे मारी, "जिस बहनचोद पटरी की तुम बात करते हो वह हराम की पटरी है। उस पर सूरी मुँह नहीं मारता, हगता है साले हगता है।"

जम्मनलाल ने बख्शी की इमदाद को आवाज़ दी, "सूरी बादशाह, हगने की अच्छी कही—लगेगी तो हगोगे ही, पटरी हो और चाहे जो हो···।"

सूरी ने बीच में ही टोक दिया, "चाहे अफ़सर की हथेली···"

सक्सेना, यदुवंशी और मनसुखानी के कहकहे करीब आधा दर्जन कमीज़ों पर तीर की मानिन्द जा लगे।

जोशी से बर्दाश्त नहीं हुआ तो कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। शर्मा के पास आ डपटकर कहा, "जिसकी फिकरेबाजी हगने-मूतने तक महदूद हो, उसके मुँह लगने की जरूरत ही क्या?"

सूरी फिर फूहड़पन से हँस दिया कि पेट पर कसी पतलून के बटन खुल गए। "वाह रे चिलगोजे, हगने-मूतने के नाम से नाक सिकोड़ता है। याद रख ब्रादर, पखाने में अफ़सर भी क्लर्कों की तरह ही टट्टी फिरते हैं।"

ब्रांच में कहकहों की होड़ लग गई तो सूरी को और शह मिली, "यारो कोई बादाम खाए या मूँगफली, गू की बू नहीं

लती।"

शर्मा ने लपलपाती आँखों से लाल झण्डी दिखाई, "बड़े नाई, ज़रा होश से, सरकारी दफ्तर है, भाँड-भड़वों का अड्डा नहीं।"

सूरी और मचल गया—"अड्डा नहीं लुच्चई का मदरसा है। सुनें तो सही इसके जवाब में तुम्हारी पंडताई क्या कहती है।"

तबीयत शर्मा की एक झापड़ देने को कुलबुला उठी, पर सिगरेट सुलगाकर रह गया। जल्दी-जल्दी दो-चार कश खींचे और कड़वे गले से कहा, "पंडताई कोई जुर्म है क्या? जब देखो यही फब्ती। तुम्हारे डर से क्या कुल-गोत्र बदल डालें?"

"बदल क्यों नहीं लेता यार, मेरी बात मान, फ़ायदे में रहेगा। कल्लूलाल के स्पेशल कोटे में एन्टरी करवा ले, चुटकी में अफ़सरी मिलेगी चुटकी में।"

हँसी-मजाक का फ़ायदा उठा अग्रवाल ने एक छोटी-सी पर्ची चुपके-से गुप्ता की ओर बढ़ाई ही थी कि जौहरी की आँ ने कैद कर लिया। "क्यों यार, क्या चक्कर है! गुप्ता को प चूनी का हिसाब दे रहे हो क्या?"

अग्रवाल बिना तेवर चढ़ाए खिसियानी-सी हँसी हँस दि "बेकार खींचते हो गुरु, किन्हीं सगेवालों का पता था।"

मनसुखानी ने चुस्त पैन्ट की जेब से कंघा निकाला लाड़ से बालों की पट्टियाँ सँवारते-सँवारते कहा, "हर जग वालों का ही बोलवाला है दोस्त! आज की तारीख में वाल, हर सगेवाल का सगेवाल है।"

माथुर हँस दिया, "क्या पहेली पेश की है यार ने

ग्रांच के बुजुर्ग ग्रकाउन्टेंट जियालाल फ़ाइल में माया खपाते-खपाते थक गये थे। सुनकर कलम नीचे रख दिया ग्रौर सिर हिलाकर बोले, "जीग्रो बेटा जीग्रो···तुमने तो निचोड़ ही निकाल डाला इस धांधली ग्रौर कवीलापरस्ती का। ग्राज ब्राह्मण ब्राह्मण का, बनिया बनिये का, कायस्थ कायस्थ का···"

सूरी कुरसी छोड़ उठ बैठा ग्रौर जियालाल बाबू के पास जा बड़ी आजिज़ी से कहा, "हिसाब-बाबू, इन सतवचनों मे एक जुमला जोड़ने की इजाज़त मुझे भी हो जाए—ब्राह्मण ब्राह्मण का, बनिया बनिये का, कायस्थ कायस्थ का ग्रौर हर हरामखोर सुसरा साला चांदी के चिट्टे जूते का।"

ग्रांच में सन्नाटा छा गया, न किसी ने सूरी से ग्रांख मिलाई, न ठहाका लगाया, सिर्फ गोयल की मशीन टिक···टिक···टिक··· करती रही।

एक तगड़ी गाली सूरी के होंठों तक ग्राई, मगर दरवाज़े पर बड़े बाबू को देख मुहरबन्द हो गई। झुंझलाकर ग्रपनी मेज़ की ग्रोर बढ़ा, कुरसी खींची ग्रौर कलमदान से कलम उठाते-उठाते बुड़बुड़ा दिया, "जनखे साले माँ के यार को मामा ही कहेंगे।"

भवानी बाबू ने कुरसी की ग्रोर बढ़ते-बढ़ते सक्सेना को ग्रावाज़ दी, "ज़रा ट्रान्सपोर्ट तक चले जाग्रो—साहब को कुछ 'इन्फ़र्मेशन' ग्राज ही चाहिए। कोई मुश्किल पेश ग्राए तो सुपरिन्टेंडेंट बिशनदायल साहब को मेरा नाम ले देना।"

कपूर ने भेद-भरी नज़र माथुर की नाक पर टिका दी। ट्रांसपोर्ट का बिशनदयाल माना हुग्रा फ़ॅसूगर है, जिसने उस्ताद बना लिया तो उसे बख्शीश ही बख्शीश।

बड़े बाबू ने भारद्वाज को तलब किया, "ऑडिट-ऑवजे-
न्स पर फ़्लैप लगाकर साहब को भिजवा दो।"

जौहरी ने माथुर को आँख मारी ही थी कि माथुर को भी
आवाज़ पड़ी," 'हज़ारासिंहप्यारासिंह' के 'ओरिजिनल्स टैण्डर्स',
कम्पैरेटिव स्टेटमैंट' और 'इम्पारटेंट डिटेल्स' की समरी चढ़ा-
कर ले आओ।"

साहब के चहेतोंकी वाछें खिल गईं। क्या कहने हैं अवस्थी-
जैसे अफ़सर के! केस की घुंडी ही तो दवोच ली!

माथुर और जौहरी मन-ही-मन भवानी बाबू का सिक्का
मान गये। क्या ढील दी है प्यारे ने!

'हज़ारासिंह प्यारसिंह' वाली फ़ाइल के पन्ने पलटते-
पलटते माथुर की आँखों में सरदार हज़ारासिंह का चेहरा घूम
गया। एक अवस्थी ही क्या सरदार साहब ने दर्जनों अफ़सर
और दफ्तर खींच डाले!

चौकसी से फ़ाइल स्टडी की, स्टेटमैंट चैक की और फ़ाइल
के सभी पहलुओं पर ग़ौर करते-करते लगा अँधेरे में जैसे किसी
ने टार्च फेंक दी हो। शुरू से आख़िर तक की पेशबन्दी के सब
जोड़-पुर्ज़े रोशन हो गये। 'ड्राफ्ट' किया, दोहराया और लंच
पर जाने से पहले फ़ाइल भवानी बाबू की मेज़ पर पहुँचा दी।

कैण्टीन की ओर मुंह किया तो कपूर ने ख़बर दी, "लौं...
का गिरोह कैन्टीन में चिपका बैठा है यार, तबीयत हो तो ...
जाए..."

माथुर ने सिगरेट सुलगाई और कैंटीन की ओर ब...
बढ़ते कपूर को बेफ़िक्र कर दिया, "फ़िक्र क्या है यार, इस ...
में नहले-दहले हों तो हों—इक्का एक नहीं।"

कपूर ने माथुर को बग़लगीर कर लिया, "तेरी इसी 'फड़नवीसी' का तो कायल हूँ यार!"

कैंटीन के शोर और प्लेट-प्यालियों की झनझनाहट में शर्मा की ऊँची आवाज़ तैर गई। "कलम के ज़ोर से कब तक अर्क निकलता प्यारे, हो गया केस 'विजीलेंस' को रेफ़र।"

माथुर और कपूर साथ वाली टेबल पर जा डटे और ऊँची आवाज़ में दो प्लेट गुलाबजामुन और दो चाय आर्डर कर दिये।

जम्मनलाल ने एक संग शर्मा और माथुर को मस्का लगाया, "आज गुलाबजामुन किस खुशी में दोस्त?"

माथुर ने पेच लड़ाती नज़र से सामना किया, "आज की तारीख में अपने को कोई ग़म नहीं प्यारे…बस इसीलिए…। सुना है बड़े बाबू को छुट्टी पर जाने को कहा गया है…"

गुलाबजामुन का मज़ा लेते माथुर ने नपी नज़र से भारद्वाज की ओर देखा और अपने हिसाब में कुछ और जमा कर लेने की गरज़ से कहा, "खाकसार को इस मामले की कोई खबर नहीं।"

गुप्ता ने हुज्जत की, "निगहबानी में तुम मशहूर हो दोस्त, पर यह तो बताओ 'हज़ारासिंह प्यारासिंह' का ताबूत किसके आर्डर से खोला गया है?"

"बन्दा तो हुक्म का गुलाम है दोस्त, आवाज़ पड़ी तो 'हाँका' भर दिया।"

"यार हाँका तो पड़ता है 'शिकारगाह' के क़रीब—मालूम तो हो किसके शिकार की तैयारी है?"

माथुर ने दाव पहचान टंगड़ी दी, "मचान पर चढ़ने की बात तो दूर, अभी कोई हथियारों से लैस तक नहीं।"

भारद्वाज ने डोरी घुमाई, "हज़ारासिंह [illegible] की

बड़े बाबू ने भारद्वाज को तलब किया, "ऑडिट-ऑबजेक्शन्स पर फ़्लैप लगाकर साहब को भिजवा दो।"

जौहरी ने माथुर को आँख मारी ही थी कि माथुर को भी आवाज़ पड़ी, " 'हज़ारासिंह प्यारासिंह' के 'ओरिजिनल्स टैण्डर्स', 'कम्पैरेटिव स्टेटमैंट' और 'इम्पारटैंट डिटेल्स' की समरी चढ़ाकर ले आओ।"

साहब के चहेतोंकी बाछें खिल गईं। क्या कहने हैं अवस्थी-जैसे अफ़सर के! केस की घुंडी ही तो दबोच ली!

माथुर और जौहरी मन-ही-मन भवानी बाबू का सिक्का मान गये। क्या ढील दी है प्यारे ने!

'हज़ारासिंह प्यारसिंह' वाली फ़ाइल के पन्ने पलटते-पलटते माथुर की आँखों में सरदार हज़ारासिंह का चेहरा घूम गया। एक अवस्थी ही क्या सरदार साहब ने दर्जनों अफ़सर और दफ्तर खींच डाले!

चौकसी से फ़ाइल स्टडी की, स्टेटमैंट चैक की और फ़ाइल के सभी पहलुओं पर ग़ौर करते-करते लगा अँधेरे में जैसे किसी ने टार्च फेंक दी हो। शुरू से आख़िर तक की पेशबन्दी के सब जोड़-पुर्ज़े रोशन हो गये। 'ड्राफ्ट' किया, दोहराया और लंच पर जाने से पहले फ़ाइल भवानी बाबू की मेज़ पर पहुँचा दी।

कैण्टीन की ओर मुंह किया तो कपूर ने ख़बर दी, "लौंडों का गिरोह कैन्टीन में चिपका बैठा है यार, तबीयत हो तो हो जाए..."

माथुर ने सिगरेट सुलगाई और कैंटीन की ओर बढ़ते-बढ़ते कपूर को बेफ़िक्र कर दिया, "फ़िक्र क्या है यार, इस टोली में नहले-दहले हों तो हों—इक्का एक नहीं।"

कपूर ने माथुर को बगलगीर कर लिया, "तेरी इसी 'फड़नवीसी' का तो कायल हूँ यार!"

कैंटीन के शोर और प्लेट-प्यालियों की झनझनाहट में शर्मा की ऊँची आवाज़ तैर गई। "कलम के जोर से कब तक अर्क निकलता प्यारे, हो गया केस 'विजीलेंस' को रेफ़र।"

माथुर और कपूर साथ वाली टेबल पर जा डटे और ऊँची आवाज़ में दो प्लेट गुलाबजामुन और दो चाय आर्डर कर दिये।

जम्मनलाल ने एक संग शर्मा और माथुर को मस्का लगाया, "आज गुलाबजामुन किस खुशी में दोस्त?"

माथुर ने पेच लड़ाती नज़र से सामना किया, "आज की तारीख़ में अपने को कोई ग़म नहीं प्यारे...बस इसीलिए...। सुना है बड़े बाबू को छुट्टी पर जाने को कहा गया है..."

गुलाबजामुन का मज़ा लेते माथुर ने नपी नज़र से भारद्वाज की ओर देखा और अपने हिसाब में कुछ और जमा कर लेने की गरज़ से कहा, "खाकसार को इस मामले की कोई खबर नहीं।"

गुप्ता ने हुज्जत की, "निगहबानी में तुम मशहूर हो दोस्त, पर यह तो बताओ 'हज़ारासिंह प्यारासिंह' का ताबूत किसके आर्डर से खोला गया है?"

"बन्दा तो हुक्म का गुलाम है दोस्त, आवाज़ पड़ी तो 'हांका' भर दिया।"

"यार हांका तो पड़ता है 'शिकारगाह' के क़रीब—मालूम तो हो किसके शिकार की तैयारी है?"

माथुर ने दाव पहचान टंगड़ी दी, "मचान पर चढ़ने की बात तो दूर, अभी कोई हथियारों से लैस तक नहीं।"

भारद्वाज ने डोरी घुमाई, "हज़ारासिंह-प्यारासिंह की

फ़ाइल फोकट में नहीं निकली यार, अवस्थी बड़ा गोताखोर अफ़सर है।"

माथुर ने अनसुनी कर कैंटीन के छोकरे से छेड़छाड़ की, "दोस्त, चाय में गुड़ और अदरक क्यों नहीं मिलाते, पत्ती ही बचेगी।"

कपूर हँस दिया, "तुम्हें यह ग़लतफ़हमी कैसे हुई कि तुम्हारे कहने के पेश्तर ही वह इस तरकीब पर अमल नहीं कर रहा। क्यों वे छोकरे—ग़लत कहता हूँ ?

"नहीं साहब !"

"क्या कहने हैं इस सादगी के…!"

शर्मा ने गोट खोली, "इस ऑडिट-ऑबजेक्शन के झंझट को कौन निवटाएगा यार !"

माथुर ने सिगरेट सुलगाकर तीली दूर फेंक दी, "वही जिसने कीचड़ में कमल उगाया होगा।"

मनसुखानी ही-ही करके हँस दिया।

"क्या छोटी बात करते हो यार ! इस बहते पानी में कीचड़ और कमल का क्या काम ! सच पूछो तो हर फ़ाइल समन्दर है समन्दर…। जाल पड़ा नहीं कि माल मिला नहीं।"

माथुर ने दरबारी आवाज़ में खँखार दिया, "अमा यार छोड़ ये चर्चे, जाल पड़ते रहेंगे, माल मिलते रहेंगे, अपने हाथ क्या लगेगा…यह कलमघसीटी और यही क्लर्की का ग्रेड…।"

लंच के बाद सिर-टुंटवा घंटे मेज़ों पर लम्बे पसर गये। तीन के गए-गए बड़े बाबू साढ़े चार तक नहीं लौटे तो टकटोहनों की टोहा-टोही शुरू हो गई। बड़े साहब के मुकाम पर जो

फोड़िया इतनी देर कैद रहे वह इस शिकंजे से निकलेगा कैसे !

अग्रवाल ने पिदकी-सी थूथड़ी उठाई, "साहबे-सदर के तिलिस्म में बड़े-बड़े शातिर नाम-पते भूल गए···।"

भारद्वाज की रेलवई मूँछों ने हल्की-सी मरोड़ खाई, फिर इत्मीनान का लम्बा कश खींचा और सामने बैठे सक्सेना का कलेजा धुँआ दिया।

"हर मुलाज़िम का नाम-पता मयअँगूठे के सरकार सरविस-बुक में महफ़ूज़ रखती है।"

सक्सेना ने टाइप किए पन्ने फिर से नत्थी कर ट्रे में फेंक दिए और जौहरी को आवाज़ दी, "दोस्त, ककड़ी के चोर को कटारी की मार वाला मामला है···"

शर्मा ने चोट की, "किसी ने सच ही कहा है चोर-चोर मौसेरे भाई···"

सूरी ने आगे फैली फ़ाइल सटाक से बन्द कर दी, 'साले, माँ के ढँढवे, न काम न धन्धा। सरकारी पंखों तले बैठ टके-टके के नगीने जड़ते रहते हैं।"

गोयल ने अग्रवाल को आँख मारी, "कानी के ब्याह में सौ जोखें—डोला उतरे तब की बात।"

सूरी ने डपट दिया, "चुप बे हाटक लोचन, नोन-तेल से वास्ता रख। दरबारी लटकों से तेरा क्या काम! इन्हें तराशने दे इन कायस्थ के बच्चों को।"

जौहरी ने रूमाल से गर्दन पोंछी और आदाब बजाकर कहा, "हम गुलामों से इतनी खफ़गी क्यों सूरी उस्ताद—हुक्म करो तो तुम्हारा भी परचम लहरा दें।"

"बहन के फोटे—यह लफ्फाज़ी रिजर्व रख अपने बाप

के लिए, जिसकी ताजपोशी जल्द ही इस महकमे में होने वाली है।"

काग़ज़-क़लम छोड़ ब्रांच-की-ब्रांच हैरत से सूरी के चेहरे पर मानो आने वाले अफ़सर के तबादले का आर्डर पढ़ने लगी हो।

शर्मा ने छाती कड़ी कर कहा, "सूरी उस्ताद, दूर की हाँकने से फ़ायदा! अफ़सर तो क्या यहाँ का पत्ता तक न हिलने देंगे 'विजीलेंस' वाले।"

आलपिन से दाँत कुरेदते-कुरेदते सूरी ने मैल मेज़ पर सटा दिया, "क्या निकाला है चूनिया यार ने ठूठी का ठीकरा! साले विजीलेंस वाले क्या गंगाजल पीकर 'इन्क्वायरी' करते हैं!"

ब्रांच में करारा कहक़हा पड़ा तो गुप्ता ने भी अपनी अक्ल की कन्दील जला ली, "जगतगुरू, इस मामले में हम तो तुम्हारा दस्तह न लेने से रहे, पर यह बताओ कि बड़े बाबू के ग्रह कैसे हैं?"

"तेरी माँ की बहन, मेरी मौसी, साले, मैं लोगों की कुण्डलियाँ पढ़ता हूँ!"

अग्रवाल महीनों से सूरी के ताने-तिशने पाले हुए था। जलकर बोला, "अगर सच सुनना चाहते हो तो पत्री पढ़ना और जिस-तिसके कपड़े उतारना एक ही चीज़ें हैं, दो नहीं।"

किसी ने छींक दे मारी—आ···छीं···।

सूरी ने अग्रवाल को घूरा, "तेरी घरवाली के नेफे में तिलचट्टा, साले हमीं से मुँहज़ोरी।"

अग्रवाल और गोयल ने जलती निगाह से एक-दूसरे को

देखा, फिर नीची नज़र कर फ़ाइलों के पन्ने पलटने लगे।

"वाह रे बेंगुन के जोड़े···बैठे-बैठे गाली हजम। सालो गुर्दा क्या माँ के जच्चाख़ाने में छोड़ आए थे? कुछ तो जिगरा रखा करो। गुद्दी पकड़ दो झाँपड़ रसीद करूँ तो भी क्या गांधी घूँट पी जाओगे?"

तबादले पर आने वाले अफ़सर को भूल ब्रांच-की-ब्रांच सिर हिला-हिला हँसने लगी।

यदुवंशी ने तर जबान से हुलारा दिया, "उस्ताद, बड़ी बुरी चोट करते हो···।"

सूरी कुछ कहे कि बग़ल में फ़ाइलें दबाए भवानी बाबू ब्रांच में दाखिल हुए।

चेहरे पर कुछ भी पढ़ सकना नामुमकिन था। सक्सेना को बुलाकर पूछा, "कोई दिक्कत तो नहीं हुई, ट्रांसपोर्ट से 'इन्फ़र्मेशन' लेने में?"

"जी नहीं—आपका नाम लेने पर दयाल साहब ने डीलिंग-असिस्टेंट को बुलाकर सब इन्फ़र्मेशन दिलवा दी—हाँ बच्चे की सुन बड़े रंजीदा हुए।"

घड़ी-भर के लिए भवानी बाबू की आँखों के आगे बेटे का चेहरा ठिठका रहा और पलकें नम हो गईं। किसी तरह अपने को सँभाल शर्मा को आवाज़ दी, "आओ यार, एक प्याला चाय तो लें···आज तो दम मारने की फ़ुरसत नहीं मिली।"

चाय की इन्तज़ार में कुरसी पर पीठ टिका छत की ओर देखने लगे तो ऐन मेज़ पर लटकती चिमनी और बल्ब को देख अजब-सा ख़याल दिमाग़ में कौंध गया—जिस लट्टू का फ्यूज़ उड़ेगा वही चिमनी से निकाल परे फेंक दिया जाएगा।

भवानी बाबू दरीबे के नुक्कड़ पर पहुँचे तो चाँदनी चौक की चकाचौंध ने मुन्नन के बुझे थान की ओर भी अँधेरा कर दिया। चलते-चलते किसी से टकराए तो पाया आँखें साइकिल की दुकान पर टँगी हैं। बेटे की छोटी-सी साध थी, पूरी न कर पाए। जेब में रखे रुपयों की बात सोचकर अफ़सोस के मारे गला रुँध गया।

सरदार बहादुर को उसके हमजोली के संग देखा तो घड़ी-भर को बड़े बाबू समझ नहीं पाए कि उन्हें आज इधर क्यों आना था। हड़बड़ाकर दिमाग़ पर सबसे ऊपर रखी फ़ाइल का फीता खोल लिया और चौकस होकर कहा, "कहो यार सरताज बहादुर, मिज़ाज कैसे हैं?"

"नवाज़िश है भवानी बाबू···इनसे मिलिये···चन्दोक साहब हैं जिनका ज़िक्र कल आपसे हुआ था।"

चन्दोक ने तापक से हाथ आगे बढ़ाया तो बड़े बाबू ने दुआ-सलाम करते-करते पस्ता कद और छोटी पेशानी का पूरा जायज़ा ले लिया।

चन्दोक ने मन-ही-मन तस्लीम किया कि आसामी खरी है और गर्ज़मन्द।

दोनों को एक-दूसरे को जाँचते-पड़तालते देख सरताज बहादुर ने सोचा, सौदा पट निकला तो छोटी-मोटी चौग़ान बाज़ी बुरी न रहेगी।

चन्दोक ने बटेरी आँखों से इधर-उधर देखा, नाक से जैसे कुछ सूँघा और सरताज के कंधे पर हाथ रख हौले से कहा—"दरीबे की ओर बढ़ते बनो दोस्त, सामने की पटरी पर अवस्थी की···टाँट नज़र आई है।"

सुनते ही भवानी बाबू ऐसे छिटके कि सरताज भाव घंटे तक उन्हें दरीबे में ढूंढ़ पाया।

हलवाई की दुकान में घुसे ही थे कि चन्दोक आ पहुँचा। हँसकर कहा, "यार तुम्हारे भवानी बाबू का पानी नाप रहा था। तुम तो बड़े कुलाबे बाँध रहे थे, यहाँ तो हाथ-भर का भी मामला नहीं..."

सरताज ने बेताबी से घड़ी देखी, इधर-उधर नजर मारी तो पाया भवानी बाबू इसी ओर चले आते हैं।

चन्दोक ने आस्तीन ऊपर की और राजदाराना अन्दाज में कहा, "भवानी बाबू, आपका अवस्थी जिस पजामये के चक्कर में है वह इन मामलों का नम्बरी दलाल है।"

भवानी बाबू ने मन के 'कॉन्फीडेन्शल-नर्क' पर कुछ नोट कर लिया और तौबा बुलाकर कहा, "खुदा का कुफ्र साहब... अवस्थी-जैसे अफ़सर से 'विजीलेंस' को क्या लेना-देना!"

मजमून शुरू होते ही चन्दोक ने तीन दोने रबड़ी के आर्डर कर दिए और तरावट की इन्तज़ार में भवानी बाबू की बात सुने बग़ैर कहा, "विजीलेंस की गिरिफ्त में अवस्थी की गर्दन है कि कलम, जानना चाहें तो बन्दा इसकी 'इन्फ़र्मेशन' हफ्ते के अन्दर-अन्दर मुहय्या कर सकता है।"

भवानी बाबू का चेहरा एकाएक दस साल छोटा दीखने लगा।

सरताज ने चन्दोक के इशारे पर पटरी मिलाई, "भवानी बाबू, आप जो भी 'डिटेल्स' चाहें बेझिझक हो चन्दोक से कहिये—जोखिम उठाने में इनका कोई सानी नहीं।"

भवानी बाबू ने एक बार तो रबड़ी के दोनों पर ही मामला

समेट लेना चाहा, फिर कुछ सोच दोनों की आँखों पर अपनी अक्ल का मोमरोगन मल दिया, "इस केस में मेरी जाती दिलचस्पी कुछ खास नहीं, सिर्फ अपने मेहरबान अफ़सर के काम आना चाहता हूँ।"

रबड़ी का पिस्ता चन्दोक के दाँत तले आ सेम का बीज बन गया। झुँझलाहट से कहा, "यह भी कोई बात हुई भाप्पे! जिसकी तुरपई उधड़ी है, उस माँ के लाल का कोई अता-पता भी तो होगा।"

तीर ऐन निशाने पर लगा जान भवानी बाबू सरताज की ओर मुड़े और निहायत संजीदगी से बोले, "यार इस ज़माने में किसके बखिये उधड़ेंगे! भलेमानुसों के ही तो···ऐसे ही बेचारे एक अवस्थी हैं। बैठे-बिठाये आ गये चपेट में।"

नाम सुन दोनों हमपेशा सकते में आ गये। गुस्से के मारे चन्दोक ने एक डबल दोना रबड़ी का और आर्डर कर मारा।

भवानी बाबू ने दिल-ही-दिल चोट बर्दाश्त कर सरताज को मजबूर किया, "सरताज बहादुर, एक और लो यार—हर्ज क्या है?"

सरताज ने सौदा पटा लेने की उम्मीद अभी तक न छोड़ी थी। आँख से कमंद फेंककर कहा, "चन्दोक यार, किसी सिलसिले में अवस्थी का ज़िक्र तो तुमने भी किया ही था।"

भवानी बाबू की कट-हुज्जती से चन्दोक को अपनी ईंट बाज़ार में पड़ी दिखाई दी। रुखाई से कहा, "अवस्थी मेरी आसामी नहीं। जिस लापड़िये ने उससे पाँच सौ खाया है वही उसकी खिसकती पतलून भी सँभालेगा।"

आ···खाँ··आ···भवानी बाबू ने चारों खूंटे कराकर

बाग-डोर अपने हाथ में सँभाल ली, "चन्दोक साहब, इसी नुक्ते पर आ रहा हूँ। वह शख्स महज़ लिफाफिया है और कुछ नहीं। यह बात साहब को भी मालूम हो चुकी है। अब तक गुमराह हुए सो हुए, अब यह मामला अपने लेवल पर आप सँभालिए।"

चन्दोक का दिल-दिमाग तरोताजा और तारीख खरी ही निकली। डकार लेकर कहा, "सरताज यार, अब आया न आनन्द, कोई बात तो बनी।"

सरताज बहादुर ने मेज़ के नीचे से चन्दोक का पाँव दाब दिया। भवानी बाबू से कहा, "भवानी बाबू, आपको जो चुनींदा-चुनींदा डिटेल्स चाहिए हों बता दीजिए, चन्दोक अपना काम शुरू करे।"

जल्द ही जेब में अनग होने वाली इन्वेस्टमेंन्ट' को भवानी बाबू ने बिलकुल सेफ़ करार दिया और लापरवाही से कहा, "जल्दी क्या है यार, अभी तो फ़ाइल एडमिनिस्ट्रेशन में चिपकी पड़ी है—ज़रूरत पड़ते ही तकलीफ दूंगा।"

चन्दोक की आंखों में फतहपुरी के तन्दूरी मुर्ग लटक गये।

"भवानी बाबू, वक्त बताइएगा, चन्दोक गरजमन्दों का गुलाम है। बदले में कुछ माँगता नहीं, फकत ज़रूरी खर्चा।"

सरताज ने मन-ही-मन चन्दोक की इस बेहयाई पर खुश हो उसे घुड़क दिया, "दोस्त क्या हल्की बात करते हो! कद्र-दानों की कभी तो पहचान लिया करो।"

चन्दोक से बचा एक खुफिया नज़र सरताज ने बड़े बाबू तक भी पहुँचा दी, "ठीक किया है भवानी बाबू…चालू एजेन्टों से ख़बरदारी बरतना अक्लमन्दी है।"

सरताज का मतलब भाँप भवानी बाबू भी ग़ौर से

बहादुर की ओर देखते रहे मानो कहते हों, "यह बाप-दादा का इल्म है दोस्त—सिर्फ लिफाफिया हथकण्डों के ज़ोर से इसे हथियाया नहीं जा सकता।"

रबड़ी के पैसे चुका दो-एक बार एहतियातन जेब में हाथ डाला, फिर अन्दर की जेब से लिफाफा निकाल चन्दोक की ओर बढ़ा दिया।

बारी-बारी हाथ मिला दोनों कीमियागरों से रुखसत पाई तो सरताज ने सुर्खरू हो सिगरेट जलाई, "कहो दोस्त, अब किधर..."

चन्दोक ने पीठ में मुक्का दे मारा, "हरामज़ादे, अब खाली मुर्ग की टाँग क्या चूसेगा—अब तो वहाँ चल प्यारे जहाँ आबे-हयात मिले।"

मन-ही-मन अपना हिस्सा अलग निकाल सरताज ने चन्दोक के सरमाए का अन्दाजा लगाया तो कन्नी काट लेनी चाही, "क्या कहूँ यार, अभी याद आया, दवा लेकर मेरा घर पहुँचना बड़ा ज़रूरी है। घर से बीमार चली आ रही हैं।"

चन्दोक ने सरताज को 'गल्लबकड़ी' डाल दी, "छोड़ भाप्पे, तेरी अम्माँ तो हर मौसम में बीमार रहती है।"

"अम्माँ नहीं यार, बच्चों की माँ का ज़िक्र है।"

"एक ही बात है दोस्त...प्यारेलाल चन्दोक तो अपनी बीवी को अपनी अम्माँ ही मानता है।"

हँसते-हँसते सरताज को खाँसी उठ आई, "तुम्हारा भी जवाब नहीं दोस्त...यों तुम्हारी बात में कुछ तुक तो है।"

रुपयों की ताज़ी गर्मी से चन्दोक खयाली घोड़े दौड़ाता किसी चकले की सीढ़ियों पर जा पहुँचा। मस्ती में कहा, "जो

जनाना हर रोज मैले-कुचैले कपड़ों में सौदाई बनी, चौ-चपड़ और चूल्हे-चौके में लगी रहे, मर्द को रिझाने के नाम पर बीमारी का पचड़ा ले बैठे, तो बता यार, उसको प्यारेलाल अम्मा नहीं तो क्या मुजरे को कमसिन माने ?"

सरदार हजारासिंह प्यारासिंह ने आला स्टील फ़र्नीचर से सजे-सजाये दफ्तर में बैठे-बैठे कम्पनी के तजर्बेकार खोजी साईंदास से पूरी तफसील सुनी, सब पहलुओं पर ग़ौर किया और स्याह-सफ़ेद का पूरा खाका दिमाग पर खींच लिया।

साईंदास के बाहर जाते ही कीमती भीनी सैन्ट का झोंका अन्दर आया और दारजी के दाहिने आकर सिमट गया। दारजी ने साफा छुआ, फिर हाथ बढ़ा स्टैनो के रेशमी बालों को सहलाया और उसके लेसदार बारीक ब्लाउज पर खुदा होकर कहा, "तमाशा मिस, शार्टहैण्ड टाइप के लिए इतनी महीन चोली की ज़रूरत क्यों ?"

तमाशा ब्यूटी सैलून से सीखी ताज़ी अदाओं से शरमाई, फिर हँस दी। हाथ से बियर धुले बाल छितराए और आँखें नचाकर कहा, "बड़े बॉस, यह छोटे बॉसका स्टैण्डिंग ऑर्डर है।"

दारजी ने ब्लाउज पर उभरे ऑर्डर का जायज़ा लिया और ज़रूरत मुताबिक मजा लेकर कहा, "तमाशा मिस, हमेशा याद रहे—लिहाज़ छोटे बॉस का और ऑर्डर बड़े बॉस का।"

तमाशा ने गर्दन झुका दिलफ़ेंक नजर से बड़े दारजी को देखा, फिर लाड़ से उनका साफा चूम लिया। उनके पहलू से निकल आँखें झपकाकर कहा, "बड़े दारजी का हुक्म हो तो तमाशा इम्पोरियम की टाट-पट्टी पहना करे।"

दारजी ने लाड़ से चपत दी, "सिर-मुनिया, इस कम्पनी में यह नहीं चलेगा। हाँ कुछ 'हाई-अप्स' के लिए रेशमी गाढ़े की पोशाकें बनवा रखो।"

तमाशा ने दारजी से डिक्टेशन लेने के लिए ताज़ा वरक निकाला और चमकते नाखूनों वाली उँगलियों में नोकदार पेंसिल अटाए, दारजी के चुटकी से पहाड़ हिला देने वाले नुस्खों का इन्तजार करने लगी।

दारजी ने टेबल-डायरी के पन्ने पलटे तो लाल-नीली तारीखों में कई चेहरे, टैण्डर लाइसेंस और ठेके चमक उठे।

बाकायदा बड़ी कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर के ठस्से से रोबीली आवाज़ में डिक्टेट करवाया :

पहला पूर
सोशल पिकनिक
फरीदाबाद

दो दर्जन तन्दूरी मुर्ग़
दो दर्जन फिश-कटलेट
दो दर्जन शामी कबाब
एक दर्जन बाकरखानियाँ
दो दर्जन रूमाली रोटियाँ
दो दर्जन तन्दूरी परांठे
दो क्रेट बीयर
दो क्रेट कोका, सोडा
और गुच्छा एक खानदानी लड़कियों का!

दूसरा पूर

स्टार कन्टरी हाउस
के

बागीचे में
सनीचर की शाम—
मेजवान मशहूर समाजसेवी रईस
प्रभुदयाल
खर्चा पूरा—'हजारासिंह प्यारासिंह'
मौजूदगी बड़े-बड़े खिलाड़ियों की :
तन्दूरी और चाइनीज पकवान
बैण्ड की हाजरी
दर्जन दो सस्ती जवान लड़कियाँ
बीवियों को 'फ्लोर' पर उलझाए रखने के लिए
दर्जन-भर किराए के लौण्डे
एक मेज मंगलवारी पकवान
और
काउन्टर पर नीरा
डिम्पल का खासा स्टाक और
रुतबे के मुताबिक लिफाफों में नकदी।

तीसरा पूर
चार डबल सूट—मेडन्स, अशोका, इम्पीरियल और
कॉन्टीनेन्टल—पढ़ी-लिखी अच्छे तलफ्फुज वाली
अंग्रेजीदाँ खुशगवार लड़कियाँ—लिटरेचर और आर्ट
की गुफ्तगू में माहिर
खजुराहो
कारबर्ट-पार्क
उदयपुर
और

आगरा के अलग-अलग ट्रिप।
महीने का खास जलसा
जनसेवक कल्चरल सेण्टर का मुहूर्त
मोअज़्ज़िज मेहमान की अगवानी
गेंदे के हार डबल साइज़, गुलाब की पंखुड़ियाँ मन-भर
एक अदद चाँदी की तश्तरी में सोने की कतरनी
बनारस ब्रोकेड का थान बतौर निशानी और नटराज की मूर्ति
एक पैकट ताकत की गोलियाँ
और
मेहमान के हुज़ूर में
कुछ बातूनी अधेड़ औरतें।

तमाशा ने चारों प्रोग्राम टाइप किये और दारजी से दस्तख़त करवाकर 'लायसां ऑफ़िसर' भाटिया को भिजवा दिये।

तमाशा ने ज़रा-सी देर की, भाटिया की केबिन में झाँका और शीरीं आवाज़ में हौले से कहा, "बन्दोबस्त साहिब, तमन्ना को एक बार 'अपग्रेड' करके तो देखो—तुम्हें पछताना नहीं पड़ेगा।"

तमाशा की आवाज़ में भाटिया को अवस्थी के लहज़े की कसावट सुन पड़ी तो बारीक मियाँ के पतले हालातों को मन-ही-मन दोहरा लिया।

पखवारे के प्रोग्राम देखे। अलग-अलग पूरों की फहरिस्त पढ़ी और माहिर मँजे अन्दाज़ में टेलीफोन पर सब 'फ़िक्स' कर दिया। सिर्फ दो छोकरियों ने नखरे दिखाए, "फ़ीस बढ़ गई है बन्दोबस्त साहिब, अब माफ़ी।"

भाटिया ने 'इकपेंचा' ढीली की। "प्यारी दोस्तो, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि भाटिया 'हार्ट-अटैक' से नसिंग-होम में नहीं पड़ा। हमेशा की तरह अपनी ड्यूटी पर तैनात है और तुम दोनों के फन की क़द्र करना जानता है। 'इम्पोरटेड मेडन्सफार्म' से लेकर गुस्ले-सेहत तक का सब खर्चा अलावा फ़ीस के।"

"भाटिया डियर, तुम शहद नहीं, खालिस गुलकन्द हो गुलकन्द।"

"शुक्रिया···!"

भाटिया ने पूरा बन्दोवस्त कर दारजी के दस्तखतों वाला कागज फाड़कर वेस्ट पेपर वास्केट में डाल दिया और इत्मीनान से तमन्ना को फोन मिलाया, "इस ओर मनमोहन भाटिया—हैलो तमन्ना डियर···!"

"तमन्ना के पास कोई वक्त नहीं हजरत, तुम रिश्वतपुरी की कोई सस्ती लड़की तलाश करो।"

"उस दिन के लिए माफ़ी चाहता हूँ।"

"माफ़ी? उस दकियानूस सैकिन्ड-ग्रेड प्रोविंशियल अफ़-सर की हज़ूरी में लगा दिया। आदाब लो और जहन्नुम में जाओ।"

भाटिया ने खुश हो सिगरेट जला ली और दोबारा नम्बर मिलाकर कहा, "तमन्ना डियर, मुबारिकबाद! इस बार अपने रिस्क पर बम्बई का इन्डस्ट्रियलिस्ट दे रहा हूँ, चलेगा?"

खुशी से तमन्ना का दिल धड़कने लगा, पर रुखाई से कहा, "तुम्हारा क्या ठीक भाटिया—जिसे तुम इन्डस्ट्रियलिस्ट कहते हो वह धोतीबाज रघुपतिया ही न निकले।"

भाटिया ही-ही कर हँसने लगा।

'क्या नाम दिया है तमन्ना डार्लिंग—क्या नाम दिया है···धोतीवाज़ रघुपतिया···"

एकाएक छोटे बॉस की ओर से घंटी बज उठी। भाटिया ने एक चोंगा रखा, दूसरा उठाया। "भाटिया यार, स्टील के लाइसेंस का कुछ करो। अगली मीटिंग से पहले-पहले दस्तखत हो ही जाने चाहिए।"

भाटिया ने बड़ी हलीमी से फटकार पाकेट में डाल ली, "मामला ज़रा टेढ़ा है हज़ूर, पर जंजीर मिलाने की पूरी कोशिश में हूँ।"

बॉस प्यारासिंह ज़रा ढीले पड़े, "लंच कहाँ ले रहे हो यार ?"

"सरकार, इस मज़दूर का क्या ठीक ! कहाँ पकाए, कहाँ खाए, अभी तक तो कुछ भी तय नहीं।"

भाटिया से उसकी नम्बर एक माशूका और दोपहर की ड्राइव झपट लेने का मलाल प्यारासिंह के दिल से धुल गया। शाबाशी के अन्दाज़ में अपने लायसॉं-ऑफ़िसर को बढ़ावा दिया, "यार जुटे रहो कसकर, मेहनत ज़रूर रंग लाएगी।"

मन मसोस भाटिया ने बिना आवाज़ के एक करारी गाली प्यारासिंह की पतलून पर दाग दी कि तमाशा ने फ़ोन पर फुसफुसा दिया, "मोहन डीयर, तुम फरीदाबाद न जा पाओगे, मेरी हमदर्दी।"

मामला भाँप भाटिया हँस दिया—"हमारे लिए तमाशा खानम भी खाली है कि नहीं ?"

तमाशा ऐसे हँसी कि रो दी हो, "क्या करूँ दोस्त—अवस्थी को तुम्हीं ने भिड़ाया है इस मासूम से···।"

भाटिया को खेल सूझ गया "पसन्द करो तो हम तीनों लंच पर मिलें—तो पक्का रहा—एक बीस—"

लायसाँ-ऑफ़िसर ने इन्कार की कोई गुंजाइश न रखी थी। हँसकर कहा, "कम्पनी की ख़िदमत में यह और सही।"

भाटिया ने अवस्थी का नम्बर मिलाया, "यार, आ रहे हो न ?"

हैडक्लर्क को पास खड़े देख अवस्थी ज़रा झिझके, फिर मुख़्तसर-सा 'अच्छा' कहकर फ़ोन रख दिया।

भवानी बाबू ने रंग-ढंग देखे तो दिल-ही-दिल दो को दो से ज़रब दी।

अवस्थी ने घड़ी देखी—एक दस। "भवानी बाबू, दो बजे वाली मीटिंग में जाना है, ज़रा प्लान-प्रोजेक्ट्स की फ़ाइल तो ले आइये।"

भवानी बाबू चौकन्ने हुए—मुस्तैदी से साहब को फ़ाइल पेश की। अवस्थी ने सरसरी नज़र मारी, दो-एक 'पोरशन' चौकसी से देखे और फुर्ती से उठ खड़े हुए।

साहब के बाहर जाते ही बड़े बाबू ने साहब की 'इंगेजमेंट' डायरी देखी—'प्लान प्रोजेक्ट्स' की मीटिंग कल शुक्र को दो बजे।

दौड़े हुए बाहर गये। अवस्थी गाड़ी स्टार्ट करने को ही थे कि भवानी बाबू को देख रुक गये, "क्यों बड़े बाबू ?"

"गुस्ताख़ी माफ़—जिस मीटिंग में हुज़ूर तशरीफ़ ले जा रहे हैं…वह कल है, आज नहीं।"

"मुझे कुछ 'डिटेल्स' डिस्कस करने योजना भवन जाना है।"

भवानी बाबू मन-ही-मन हँसे—इतने बड़े शतरंजबाज़ की
ई थुड़ी चाल !

ुफंगे दहनपुर जो छूटी तो दफ़्तर-का-दफ़्तर ठंडा होकर बैठ
गया ।

एक आर्डर निकला अवस्थी के तबादले का, तरक्की पाई । एक आर्डर निकला कार्पोरेशन से सिन्हा का । ओहदा-बढ़ाई हुई और अवस्थी की जगह पाई ।

ऐन दस बजे दफ्तर में हाज़िर ब्रांच अपनी-अपनी सीटों पर सफेद-पीले कागज़ों के गट्ठों में जुट गई ।

कुर्सी बदलते सौ सुराखों की खोज-पड़ताल । अपने-अपने ढोके सँभालने में फुरसत किसे !

भवानी बाबू ऐसे मसरूफ कि दम मारनें की फुरसत नहीं । कई फ़ाइलों पर साहब के आर्डर बाकी थे, गज़ब की फुर्ती से फ़ाइलों पर फ्लैप लगा-लगा रखते चले ।

मिनट-भर को सिर उठाया तो सबको अपनी दानिशमन
से ख़बरदार किया, "अपनी-अपनी फ़ाइल देखभाल लो—कि
पर भी दस्तख़त या आर्डर बाकी हों तो ख़मियाज़ा आप
उठाना पड़ेगा । याद रहे फ़ाइल के पेटे में फ़रियाद का
घर नहीं..."

जियालाल हिसाब के हिन्दसों में बड़ी ज़ोर से मसरू
पर बड़े बाबू की ताईद करना ज़रूरी समझा, "वजा फ
भवानी बाबू, कुर्सी क्या बदलती है, छोटा-मोटा ज़ल
उठ आता है ।"

जौहरी ने नये आका की तारीफ में जोड़ा, "

ज़मीन हिलती ज़रूर है, पर मज़बूतों से टिक जाने के लिए।"

शर्मा और भारद्वाज इस गुफ्तगू पर मन मसोसकर रह गए। अवस्थी की वदली के आर्डर क्या निकले, भाई-बन्दों के दम-ख़म ही नार्मल से नीचे उतर गये।

मनमुखानी ने ब्रांच के दोनों खेमों का ख़म तौलने की कोशिश की, "यार कुछ भी कहो—आदमी अवस्थी होशियार हैं। हज़ार ऊँच-नीच हुए, पर बॉस आख़िर गया तो तरक्की पर ही।"

सूरी कब से जबान में हरारत महसूस कर रहा था—फ़ाइल का नोटिंग भूल पलामी आवाज़ में फूट पड़ा, "तरक्की के जुलाब से साले परशुरामियों का पेट अभी साफ़ नहीं हुआ। फफूँदी के—तरक्की आजकल काबलियत से नहीं, मुँहचुमाई और पाँवघिसाई से मिलती है।"

भवानी बाबू ने सख़्ती से सूरी की ओर देखा, "ज़बान पर काबू रखो यार, वक्त-बेवक्त कोई इधर आ निकला, तो जान को आफ़त हो जाएगी।"

सूरी पसरकर कुर्सी हिलाने लगा। "बड़े बाबू इससे बेफ़िक्र रहिये—अभी तो कोरेरिशनियाँ दबाकर पार्टियाँ खाएगा। दिन-वार पूछेगा। मुहूर्त निकलवाएगा, तब कहीं फिरना पहुँचेगा इस दफ्तर के बरामदे तक।"

शर्मा-भारद्वाज गिरोह नये साहब के बारे में कुछ और जानने को बेताब था, पर वक्त की नज़ाकत पहचान मुँह न खोल पाया। अग्रवाल ने चालाकी से परदा उठाने की कोशिश की—"सूरी उस्ताद, मालूम होता है तुम्हें इस मज़...

काफ़ी वाकफ़ियत है। सच तो यह है कि तुम्हीं ने सबसे पहले अवस्थी की ट्रान्सफर की दागी थी। लगे हाथ कुछ और रोशनी डाल दो, मालूम तो हो इन लौण्डों को, किस हस्ती तले काम करने वाले हैं !"

सूरी ने अग्रवाल को घूरा, "अबे ओ बीड़ी के बण्डल, इन पोदनों की अपनी क्या हस्ती ! हस्ती है अवस्थी के विधान-सभाई ससुर की। उसकी लुगाई की यारी-दोस्ती की। सिन्हा के मास्टर बाप के रुतबेदार शागिर्दों की। इसी बूते पर शहमात का सारा खेल जारी है प्यारे...!"

दिल कुछ और सुनने को उछलने लगा, पर मामला खतरनाक जान सब दबे-दबे हँस दिये।

शर्मा ने खीजकर कहा, "सूरी, यार असली बात पर आओ न ! सुना है नया बॉस बड़ा सख्त तबीयत है।"

"सख्ती काहे की यारो···वह नूनगुनः तो बड़ा मुहब्बती है। बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे चम्मच की कद्र करना जानता है। घी-मक्खन के डिब्बे तैयार कर लो, काम आएँगे काम।"

यदुवंशी-सक्सेना ने एक-दूसरे की ओर देखा और आँखों-ही-आँखों में कुछ तहैया कर लिया।

"सूरी दादा, इजाज़त हो तो लंच से पहले-पहले काम निबटा लें।"

"अबे ओ पेटीकोट के—मैं तेरे हाथ पकड़े बैठा हूँ ? कर ले दो-चार दिन सरकार की ख़ैरख्वाही, फिर तो तुम्हारी बिरादरी का नौशा आने ही वाला है। चम्मचबाज़ी में ही दिन निकल जाया करेगा।"

मज़मून को खतरे के निशान से ऊपर आते देख माथुर ने

सूई पकड़ ली और हँसकर कहा, "दादा, दफ्तर में तो एक बिरादरी अफ़सरों की और एक बेचारे क्लर्कों की। दूसरा तो कोई हिसाब ही नहीं।"

"वाह रे चाशनीगीर, क्या निकाली है फाँक मुरब्बे की! सालो, कागज के कीड़ो, तुममें से हर एक उस कारपोरेशनिए के तोशखाने पर अपना सब्जी-सलाम चिपका आया है। झूठ कहता हूँ?"

दर्जनों चेहरों पर ऐसा सन्नाटा छाया कि खुशी का इज़हार करने को जोशी ने कह ही जो दिया, "गुरू, हम तो एक बात जानते हैं, जो घर का राजी होगा वह न किसी से मक्खन धरवाएगा, न किसी से सलाम करवाएगा।"

"चुप ओ चूतियानन्दन, आजकल जो उठता है रिश्वत के खमीर से नम्बर दो का पैसा जोड़ खानदानी अमीर बना फिरता है।"

जम्मनलाल ने चुटकी भरी, "सब पर एक ही लकड़ी घुमा दी उस्ताद!"

सूरी ने उठकर खिड़की में से नाक सिनकी और रूमाल से पोंछकर कहा, "बेटा जम्मनलाल अरोड़ा, याद रख गुरू का कहना—आदमी के हर पिल्ले को पेट और पतलून सताते हैं।"

एकाएक चरमराते जूतों की आवाज ब्राच के दरवाज़े पर ठिठक गई। आँखें उठा जो देखा तो अवस्थी के साथ नये साहब को खड़े पाया।

भवानी बाबू लपककर कुर्सी से उठे और आदाब बजा पास जा हाज़िर हुए।

अवस्थी ने मुलायम आवाज में पूछा, "बड़े बाबू, क्या

रहा है ?"

बड़े बाबू ने अपनी-अपनी सीट पर तैनात स्टाफ़ पर नज़र मारी और बड़ी शायस्तगी से कहा, "रुटीन के कागज़ हैं साहब, लंच तक निकल जायेंगे।"

सिर हिला अवस्थी ने गहरी अफ़सराना आवाज़ में कहा, "अब आप सब सिन्हा साहब के साथ काम करेंगे। मुझे पूरी उम्मीद है, इन्हें भी आप उसी तरह कोआॅपरेशन देंगे जैसा मैं आपसे पाता रहा हूँ।"

सिन्हा ने ज़रा-सा सिर घुमाकर घुटी-घुटी नज़र ब्रांच पर डाली और अवस्थी की ओर मुँह कर कुछ फुसफुसा दिया। दोनों अफ़सरों के पीठ मोड़ते ही दर्जनों सिगरेटें एक साथ सुलग उठीं।

अपना नजूम गलत हुआ जान सूरी ने कलई फेर देनी चाही।

"लो यारो, सरकारी आर्डर क्या हुआ, घर के ज़नाने का मनमाना खेल ही हो गया। जब चाहा लड़की निकाल मारी जब चाहा लड़का। भला पूछो जो मुअत्तल होने वाले थे वे तरक्की के हकदार बन बैठे ?"

इस बात पर चुप रहना भारद्वाज की बर्दाश्त के बाहर था—"सरकार अन्धी नहीं उस्ताद, आँखें रखती है और अपने कारिन्दों को ठोक-बजाकर देखने की अक्ल भी।"

सूरी ने तैश में आ कुर्सी पर ही फसक्कड़ा मार लिया, "बहनचोद सरकारी दूरबीन का इल्म मुझे भी है। पर जो टूंटी और टंकी की सप्लाई के बन्दोबस्त यार लोगों ने कर रखे हैं वहाँ बहनचोद अक्ल का क्या काम ? वहाँ तो चालू है नकद-नारायण।"

सूरी का अगला वार पहचान शर्मा ने टोक दिया, 'बहुत

बोर करते हो यार, कभी तो चुप रहा करो।"

सूरी सिर हिला-हिलाकर हँसा, "मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है यार! अवस्थी के साथ चले क्यों नहीं जाते? मिन्नत-समाजत कर देखो। तुम उसकी सरपरस्ती में खुश रहोगे और उसे भी नये दफ्तर में दो-चार जी-हुजूरियों की जरूरत तो होगी।"

शर्मा अपनी कुर्सी से उठा और सूरी के पास आ कड़ककर बोला, "हुजूरिया तुम्हारा बाप होगा—समझे···?"

सूरी शर्मा को घूरता रहा जैसे मुंह पर ही थूक मारेगा, फिर शरारत से हँस दिया, "बस इतने में ही पाद मार दिया साले! नोट कर शर्मा ब्रदर—मेरा बाप कुछ भी था, पर मुझ-तुम जैसा कलमघसीटी क्लर्क नहीं था।"

इस बार आंच को हँसता देख सूरी कुछ चुपका-सा हो गया। फिर बड़ी मायूस आवाज में कहा, "यार, लानत तो हम सब पर है जो क्लर्क की कुर्सी पर ही पेंशन पा जाएँगे। इस उम्र में हमारा-तुम्हारा छुटकारा तो होने से रहा, हाँ अपने-अपने लड़कों को अच्छे स्कूल-कालेजों में पढ़ाओ, साले नहीं तो इन्हीं अफसरों के लौंडे तुम्हारे बच्चों के गलों में भी नाखून देंगे। और किस्मत के मारे वे भी इन्हीं कुर्सियों पर बूढ़े हो जायेंगे।"

कुर्सियों पर टिकी पीठों पर जैसे किसी ने कोड़े फटकार दिए हों। अग्रवाल ने सूखे गले से पूछा, "सूरी उस्ताद, तुम्हारे अपने बच्चे किस स्कूल में पढ़ते हैं?"

जवाब में सूरी ने बड़ी हिकारत से पहले अग्रवाल की ओर देखा। अनमनी-सी नज़र बरामदे में कुछ टटोलती रही, फिर

ख़ुश्क गले को खँखारकर कहा, 'वे साले अभी नीली छतरी वाले के मदरसे में ही पढ़ते हैं। सालों को वहीं का वज़ीफ़ा लगा हुआ है।"

सिन्हा ने पुख़्तामिज़ाजी से कुर्सी पर चूतड़ क्या टिकाए, पेशीनगोई के मुताबिक जनरल चाँद-मारी शुरू हो गई। कई खीसे फटे, कई पाकेट कटे और कई ठेकेदारों की पेशानियाँ ठण्डी हुईं। करीब आधा दर्जन टेलीफोन नम्बर गूंगे हो गए और दफ्तर को बहनोई का घर समझने वाले पेशेवर चेहरे बरामदों में से रफूचक्कर हो गए।

नए साहब के कमरे को नई तरतीब मिली। दरी बदल गई। बाएँ हाथ को पड़ा टेलीफोन दाएँ को आ गया और भुनी गन्दम-सा चेहरा हुकूमत बनकर कुर्सी पर चिपक गया।

भवानी बाबू नए साहब के हुज़ूर में पहली बार हाजिर हुए तो रम्ज़शनास सिन्हा ने एक ही नज़र में भाँप लिया कि बाबू उन्होंने अक्ल का तेज़ पाया है।

भवानी बाबू ने सलीके से फ़ाइलें पेश कीं। जो भी केस सामने रखा तैयारी के साथ। पीछे का रेफ़रेन्स दिया तो पुराने अफ़सर की शान में न कोई गैरमाकूली इशारा किया, न बेकार बयानी। सिन्हा को दिल-ही-दिल इस वज़ादारी से कुछ झुँझलाहट हुई।

बड़े बाबू जाने को उठे तो भौंहें चढ़ा, सिन्हा ने अपने रौब की पहली कील गाड़ दी, "भवानी बाबू, स्टाफ़ को ज़रा कसकर रखिए—पहले जैसा हल्ला-गुला मुझे पसन्द नहीं।"

"जी साहब···!"

भवानी बाबू के सीट पर पहुँचने से पहले ही लड़के बैठे-बैठे उनकी पहली पेशी के अन्दाज़े लगा रहे थे। चाहा आज ही लगे हाथों साहब के पैग़ाम का ऐलान कर दिया जाय, फिर जाने क्या सोच अपने चेहरे को ढीला छोड़ा और ज़रा ऊँची अफ़सरी के अन्दाज़ में चाय का आर्डर कर दिया।

मतलब साफ़ था—नये अफ़सर पर बड़े बाबू का हैडक्लर्की सिक्का जम गया।

माथुर ने पूछा, "कहो साहब, कैसी रही मुँहदिखाई ?"

"कलम कुछ चले तो मालूम हो यार, अभी से क्या कहें…"

भारद्वाज ने कसोरा बजा देने की ग़र्ज़ से कहा "मशहूर तो सिन्हा के बारे में यह है कि कलम नहीं शमशीर है। इधर चली तो गर्दन चाक, उधर चली तो टपकन में ही रूह निहाल ! सुनते हैं नया साहब अंग्रेज़ी फर्राटेदार लिखता है।"

भवानी बाबू मनमुखानी की ओर मुड़े, "आँकड़े तैयार हो रहे हैं न ? कल लंच तक चाहिए होंगे।"

"उसी में जुटा हूँ बड़े बाबू ! हाँ एक अर्ज़ है—साहब की आमद में एक पार्टी हो जाए।"

सक्सेना ने खुशी-खुशी दिल की ज़ाहिर की, "दादा, आज तो शामी कबाब और चाय उड़े।"

अग्रवाल ने जल-भुनकर कहा, "शामी कबाब, मांस, मछली और माता का प्रसाद, इनके सिवाय कुछ और भी भाता है इन कायस्थ के बच्चों को !"

जौहरी ने सक्सेना को आँख मारी, "बोल बे, करता है कबूल यह जुर्म ?"

सक्सेना ने शरारत से बड़े बाबू की ओर देखा और कान

पकड़ नसीहत निकाली, ""कबूल, गुनाह कबूल ।"

गोयल कुछ कहना ही चाहता था कि मठरी-कचौड़ियों की डकार ने रास्ता रोक दिया।

सूरी ने आवाज़ सुन फ़ाइल पर से आँख उठाई, "सुबह-सुबह किसके यहाँ से डट के आया है दोस्त! ज़रूर किसी आसामी ने तक़ाज़ा फेंका होगा।"

गोयल ने गुस्से से देखा तो शर्मा ने उसकी ओर एक खुफिया नज़र फेंक सूरी को उलझा लिया, "सूरी यार, उस विलायती कचरेका क्या किस्सा रहा? सुना है, कोई पहुँचे हुए हज़रत लाखों हज़म कर गए। एक बार केस खुले तो बड़े-बड़े पोशीदा राज़ ऊपर आएँगे।"

"मोटे दिमाग पर रंदा मार साले—उस चिटफंडी की धोती भले खुल जाय, उसके खिलाफ केस नहीं खुल सकता।"

"ऐसा भी क्या अंधेर है वड़े भाई, आख़िर कानून के 'शिकंजे' से कब तक बचेगा?"

"जानता भी है इस कचहरी के कट्टे को! बीस ट्रकें, दो चिटफ़ण्ड और काला बाज़ार स्मगलर सिंडीकेट का मालिक है। औरतों का कोऑपरेटिव वहनचोद अलग से चलता है।"

"औरतों के कोआॅपरेटिव से क्या मतलब है तुम्हारा दोस्त?"

"वाह भोले बादशाह, रहते किस दुनिया में हो! हर नाक-नक्शे और कद-बुत की शेयर-होल्डर ज़नानी का कार्ड तैयार रखता है। सेठ और टेलीफोन के ज़रिये इज़ारबन्द-सर्विस चलाता है।"

भवानी बाबू ने डपटा, "कहे देता हूँ, अब पहले जैसी बात नहीं। मुँह से उलटी-सीधी निकालने से परहेज़ किया करो।"

सूरी ने चाय-समोसे आते देखे तो अपनी सीट छोड़ भवानी बाबू के सामने वाली कुर्सी खींच ली, "सीधी और उल्टी क्या भवानी बाबू, अपने बहनचोद तो आला अफ़सर बनने से रहे। अक्ल मुताबिक काम करते हैं और खरे को खरा और खोटे को खोटा कहते हैं।"

किसी ने होले से कस दी, "सूरी उस्ताद, कहने वाले कुछ और भी कहते हैं।"

सूरी ने आँखें दिखाईं, "कनस्तर के कंकर फूट भी तो दे अब, पता तो लगे बाबू लोग कहते क्या हैं?"

"बुरा न मानना यार, सुना है अवस्थी के पहले चावला के ज़माने में हरे पत्ते तुमने भी कम नहीं बटोरे।"

"एक-सौ-तीस के ग्रेडिये साले, एक पतलून धोता हूँ, दूसरी लोहा कर दफ्तर हाज़िर होता हूँ। हराम की कसम न होती तो फ़ैलसूफ़ियों का टिकट मैं भी कटा सकता था।"

गोयल ने बीच-बचाव के बहाने और भड़काया, "सूरी यार, असल में चावला से तुम्हारी जो साठ-गाँठ थी, उसी से यह नतीजा निकाला गया है।

"चुप ओ पंसेरीलाल, मेरी और चावला की क्या बराबरी? वह बारह-सौ-बीस रा लट्टू और मैं ढाई-सौ रुपल्ली का टट्टू।"

लोगों के कहकहों में भी अग्रवाल चूका नहीं। "कुछ भी कहो यार, ये तो तुम दोनों हम-वतनी।"

सूरी ने उठकर अग्रवाल की गर्दन पकड़ ली, "सुन ओ वेब्रसी के टैण्डर, चावला कहाँ से आया मेरा हमवतनी! मैं ठेठ मर्दान का और चूतिया चावला काला बाज़ार दिल्ली की पैदाइश, साले फिर कभी मुझे उसको ब्रेकट लगाई तो सीधे पानीपत

पहुँचा दूंगा।"

बख्शी ने मज़ा लिया, "गाली-गलौज में क्या रखा है उस्ताद, असल बात बताकर इन यार लोगों का वहम खतम कर! फिर देखें तुम पर कौन चार्ज लगाता है हमवतनी का और इसकी आड़ में हराम की फसल काटने का!"

"चुप बे अफले, टी ए—बिल पर ऐसा ऑबजैक्शन ठोकूंगा कि बीवी के सारे अरमान धरे रह जाएँगे।"

"फिर वही टालमटोल यार, यह तो बता दो चावला तुम्हें आये दिन किस गड्डी का सलाम भेजा करता था?"

इस बार सूरी पेंट फुला-फुला हँसा, "सलाम की सुनोगे तो घी में तली कलेजी भूल जाओगे।"

"कल से पहले तुम्हारी तरक्की हो उस्ताद, अब इन्तज़ार न करवाओ, बस कह ही डालो।"

"कनरसिये साले, तो लो सुनो। सरदियों के दिन थे। छुट्टी के दिन शाम को सस्ती सब्ज़ी की तलाश में जो निकला तो चलते-चलते कहीं-का-कहीं पहुँच गया। इत्तफाक से घड़ी घर भूल गया था। इधर-उधर देखा कहीं से वक्त पता लगे। तभी पटरी से लगी चावला की मोटर दीख पड़ी। सोचा लगे हाथों सलाम भी हो जाएगा और वक्त भी पूछ लूंगा साहब से। वक्त तो क्या पता लगता, पर इस तुम्हारे यार ने जो पता पा लिया वह टाइम और घड़ी दोनों से बड़ा था।"

"पहेलियाँ न बुझाओ यार, मोटर में था क्या?"

" 'अलफ' से लेकर 'ये' तक के खुलासे भी मैं ही करूँ! तो लो सुनो—मोटर में हो रहा था—गुल्ली-डंडा।"

आँच-भर की आँखों के आगे मेज, कुर्सी और फाइलें सब

गायब हो गये। सांस रोके किसी ने पूछा, "यार बताओ तो सही, था कौन-कौन ?"

सूरी की हँसी थुलथुले पेट पर आ फैली, "होता कौन, ठेकेदार रलियाराम की तमंचो और अपना साहब चावला।"

सूरी ने समोसा मुंह में डाला, चाय के घूंट लिये और हाथ से मुंह पोंछकर कहा, "ससुरो अगले ही दिन से बस साहब के सलाम शुरू हो गये। कभी बुलाकर पूछता—सूरी इस सीट पर कितने साल से काम कर रहे हो? कभी पूछ लिया—एक्साइज में जाना चाहोगे···याद है बड़े बाबू, सीनियोरिटी के चक्कर में मेरा केस भी चावला ने धकेला था ?"

अब तक सक्सेना का दिल-बदन फुंकने लगा था। चावला के अहद में कुछ सौदे उसने भी पटाए थे। जलन के मारे चुप न रह सका, "अब तो फन्नेखां जो भी कहेंगे, सफेद सच बन जाएगा।"

"बत्ती बनाकर डाल ले इस सफेद सच को अन्दर। खुद ही सोच साले, मुझे चावला से क्या लेना-देना था! न तो वह रलियाराम की चुदक्कड़ अशर्फी और न वह ठंडे पानी का चश्मा जो ग्रेटर कैलाश में चावला ने नई कोठी में फिट करवाया था। झूठ क्यों कहूँ ब्रादर, इतना फ़ायदा जरूर हुआ कि ज़माने से खराब सूरी के 'कॉन्फीडेंशल' पर किसी गलतफहमी में ही चावला जाते-जाते एक 'गुड' ठोक गया।"

जौहरी ने चकोटी ली, "सूरी उस्ताद, हवाई तुमने गज़ब की छोड़ी है, पर यह तो बताओ दरिया चावला इस दारुल-खिलाफा से निकलकर मुड़ा किधर ?

"जो एक ही हल्ले में अमरीका पहुँच जाय बाबू साहब,

समझ लो कोई ऊँची घात है।"

भारद्वाज से नहीं रहा गया, "पता तो लगे किस चार हाथ वाले बाप की छतरी है चावला के सिर पर ?"

सूरी ने एक और समोसा निगला और चाय का प्याला खाली कर मुंह पोंछ लिया, "यह इन्फर्मेशन भी चाहिए तो हाज़िर है। चावला की माँ मशहूर लीडराने कौम हरिभाईजी की धर्म-बहन थी। समझे बेटा, धर्मात्मा मामा भांजे को अभी तक लड्डू खिला रहा है और बहन की आशिकी के सबूत दे रहा है।" सिन्हा के हाथों महकमे के अन्दरूनी पेचों के कसते ही सरदार हजारासिंह ने अपनी पुरानी हिकमत की किताब से बीमारी का अक्सीर नुस्खा निकाल मारा—पेचिश का इलाज इस्पगोल। छोटे-बड़े साले जोरावरसिंह और, जुझारसिंह और बेटे प्यारासिंह के साथ 'इमरजेन्सी लैवल' पर सलाह-मशविरा किया और कुछ अहम कदम उठाने का फैसला कर दिया :

घाटे में चल रही 'सिस्टर-कनसर्न' 'न्यू इरा एन्टर प्राइज़' में कुछ सरमाया डालकर नई रूह फूंक दी जाए।

कम्पनी के डाइरेक्टरों में समाजसेवी गोकुलभाई को शामिल कर लिया जाए।

छोटे सरमाए वाले कुछ ठेकेदारों का एक पैनल बना लिया जाए और उनकी सप्लाई भुगतान में 'न्यू-इरा' सब तरह की माली और टैक्नीकल मदद करे।

गोकुल भाई के दामाद तनसुखराय जैन को 'न्यू-इरा एन्टर-प्राइज़' का मैनेजर मुकर्रर कर दिया जाए।

प्यारासिंह की बीबी, बीबी सतवन्तकौर के नाम की गोल्फ-लिंक वाली कोठी कम्पनी के लिए गैस्ट हाउस के मुनासिब

किराये पर ले ली जाए।

कोठी की साज-सजावट का ठेका सतवन्तकौर के भाई सुरजीतसिंह को दिया जाए जो 'डैकोरेटर' की मदद से कोठी को दर्जा अव्वल बना दे।

गेस्ट-हाउस में एक बॉर-काउण्टर हो और उस पर पार्क क्लब के सीनियर आबदार को मुंह-मांगी तनख्वाह पर तैनात कर लिया जाए।

'हजारासिंह प्यारासिंह' के हफ्तावारी गजट की कापी भाटिया के पास पहुँची तो मूँछों पर गोंद ही चिपक गया। आलीजाह ने रिसालदारी भी दी तो किसे! देखें 'हजारासिंह प्यारासिंह' के वाड़े में कितने नये किल्ले और गड़ते हैं, कितनी भैंसें रस्सा तुड़ाकर भागती हैं। जिस सियासी गुर्गे को खुद भाटिया ने 'लोकल-सरकल' का कुतुबनुमा बनाया, अब वही सब्जीखोरा मुकाबले की कुर्सी पर मैनेजरी भी करेगा।

दारजी ने भाटिया को याद फरमाया तो भाटिया को बिलकुल मालूम था उसे क्याकहा जाएगा, क्या पूछा जाएगा और क्या दिया जाएगा।

सरदारजी हस्बेमामूल तमाशा को डिक्टेशन दे रहे थे। हाथ से बैठने का इशारा किया और डिक्टेशन जारी रखा :

जैतपुर वाला फार्म मामूली दामों पर अवस्थी की बीवी को बेच दिया जाए।

जल्द ही कुछ ऊँचे आला अफ़सरान और गैर-मुल्की नुमाइंदों के लिए शिकार का बन्दोबस्त किया जाए।

अवस्थी के नये बॉस श्रीवास्तव के लिए हर किस्म की 'एन्टरटेनमेंट' मुहय्या की जाए।

सिन्हा का रवैया ढीला करने के लिए 'मातादीन विन्दा-प्रसाद' के ज़रिये 'तरमाल' पेश किया जाए।

ऑफीसर ऑन-स्पेशल ड्यूटी नित-नेम वाले आत्माप्रसादजी की शान में सत्संग और कीर्तन करवाए जाएँ।

ढींगरा, टंडन और अवस्थी की इन्क्वायरी में उनके रोल का पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया जाए।

मशहूर बहन तरंगवती की मदद से किसी पहुँचे हुए साधू-महात्मा को प्रवचन के लिए बुलाया जाए। महात्माजी नजूमी हों तो सोने में सुहागा।

नये इन्कमटैक्स ऑफ़िसर कपिलदेव को अभी दो-तीन हफ्ते 'वाच' किया जाए।

तमाशा के उठते ही दारजी ने भाटिया को शाबाशी की आवाज़ में कहा, "तनसुखराय अभी काम में नया है, पेचीदा मामलों में उसे गाइड करने की ज़रूरत होगी।"

सरदारजी ने लगाव से साफे पर हाथ फेरा, "काकाजी! किसी-न-किसी तरह न्यू इरा को खड़ा तो करना ही हुआ न!"

भाटिया ने बिना कुछ कहे होंठ सिकोड़ लिये तो दारजी की पारखी आँख अँधेरे में निशाना टटोल गई। करीब आधी सदी की ममियाई निचोड़कर कहा, "बरखुरदार, गोकुलभाई का रसूखी कंधा खरीदने के लिए तनसुखराय को मैनेजरी देनी ज़रूरी थी। सोचने वाली एक बात और भी थी। गोकुल भाई का बहनोई साबुत सीनियर मिनिस्टर है। कोई कटपीसवाला मामला भी नहीं था।"

दारजी ने उड़ती-उड़ती नज़र से भाटिया का सूजा हुआ चेहरा देखा और मज़ाक से कहा, "तुम्हें किस बात का फिक्र है—

तुम तो इन लौंडों-लपाड़ों के मानीटर हो यार ?"

जवाब में भाटिया न हमेशा की तरह अदब से हँसा न मुस्कराया। मेज पर से टाइप किए कुछ कागज उठाये और चुपचाप बाहर हो गया।

"माँ-याव्हा···।"

दारजी ने लाड़ से गाली दी और तमाशा को बुलाकर भाटिया के लिए एकमुश्त तीन सौ की तरक्की का आर्डर लिखवा दिया।

दारजी के दस्तखत होते ही तमाशा अन्दर आई और भाटिया की गर्दन से झूलकर कहा, "बड़े उस्ताद हो 'बॉस', फ़कत मुँह फुलाकर तीन सौ झाड़ लिये।"

भाटिया ने आर्डर पढ़ा और तमाशा को चूम लिया।

"तमाशा डार्लिंग, तुम्हारी उँगलियाँ हमेशा ऐसे खुशगवार आर्डर टाइप करती रहें।"

"मोहन डियर···।"

तमाशा की आवाज एकाएक चुलबुलाहट से उदासी में बदल गई।

भाटिया ने भाँपा और हाथ से घेर तमाशा को मेज पर बिठा लिया। "तमाशा डियर, तुम्हें फ़िक्र किस बात का है? भाटिया को अपने से ज्यादा अपने साथियों का खयाल है। मौका तो लगने दो···"

तमाशा ने बेबसी की मुस्कराहट पर चमक बरसा दी और दोस्ती का हाथ लहराकर बाहर निकल गई।

भाटिया ने मँजे खिलाड़ी के अन्दाज में अपनी तरक्की का आर्डर डबलपेग की तरह हलक से नीचे उतार लिया, सरूर-

भरे हाथों टेलीफोन उठाया और रोज़ाना का काम शुरू कर दिया।

"श्रीवास्तव साहब, भाटिया अर्ज़ कर रहा हूँ।"

"कहो यार, क्या हुक्म है ?"

"हुजूर, रात को तकलीफ कर सकें तो मशकूर हूँगा।"

"तकलीफ कैसी यार, हुक्म करो।"

भाटिया ने आवाज़-ही-आवाज़ में श्रीवास्तव को आँखों पर बिठा लिया, "हुक्म के लायक तो इस गुलाम के पास क्या है साहब—कुछ यार-दोस्त मिल रहे हैं···"

"जगह बताओ दोस्त—पक्का तो नहीं, हाँ कोशिश ज़रूर करूँगा।"

"अपने गरीबखाने पर ही।"

श्रीवास्तव के पास बैठे अवस्थी ने इस गुफ्तगू से कुछ अन्दाज़ लगाया और तड़पते हुए अपने कमरे में आ तमाशा का नम्बर मिलाया—"माशू, आज रात तुम भाटिया के यहाँ नहीं जाओगी ?"

"ओफ़···ओ···किस इन्फर्मेशन का ज़िक्र कर रहे हो ?"

फ़ोन पर बीवी का लहजा सुनकर अवस्थी का खून खौलने लगा, पर किसी तरह अपने पर काबू पाकर कहा, "वही सब्बरवाल सतनिवास वाला मामला···"

"ओह—मौका मिला तो फ़ोन पर बात करने की कोशिश करूँगी। मालूम नहीं धीरू भाई को फ़ुरसत भी होगी कि नहीं।"

धीरू भाई के नाम से ही तमाशा की कमर अवस्थी के सीने में शोरगुल मचाने लगी। सूखे गले से कहा, "शाम को तो तुम्हें कुछ करना नहीं—धीरू भाई के यहाँ चली क्यों नहीं जातीं !"

'मातादीन-विन्दाप्रसाद' के नाम का पहला टैण्डर मंजूर कर सिन्हा ने अपने अहद में महकमे की नई 'लाइब-वायर' और उसके 'मेन-करेण्ट' की बिस्मिल्लाह कर दी।

भारद्वाज-शर्मा गिरोह ने दिल-बदन में कुछ ऐसी बशाशत पाई कि लम्बे सफ़र के बाद सीधे हौज़खास में गुस्ल किया है।

खुले आम अवस्थी के औंधिये में ठेक दिखाकर 'वाह-वाह' करने वाले मंमूविये ठण्डे होकर अपनी-अपनी फ़ाइलों में गुम हो गये तो शर्मा ने बाकायदा छेड़छाड़ करने की गरज से सिन्हा की वलदियत और खानदानी शजरा ही पेश कर दिया :

मुरादाबाद के तम्बाकू फरोश जनाब सुखनन्दनप्रसाद के साहबज़ादे हुज़ूर सिन्हा साहब कुर्सी पर बैठते ही आला मुग़लिया खानदान से तआल्लुक रखने वाले हो गये। पी० सी० एस० में तुक्का लग जाने के बाद दो-चार जगहों में कुछ

कि अफ़वाह के मुताबिक सरकार जल्दी ही इन्हें आई० ए०
० में नामज़द करने वाली है।

वतन-परस्ती के सिलसिले में क्योंकि इनके दादा साहिब
मौसेरे भाई कुछ दिन अन्दर की हवा खा आए थे, इसलिए
ायासी हल्कों में भी काफी रसूख रखते हैं।

इधर हुज़ूर के ननिहाल का पीढ़ियों से चला नाम 'माता-
दीन-बिन्दाप्रसाद' अब बढ़िया 'लेटर-हैड' पर छपकर सरकारी
ठेकेदारी की फहरिस्त में शामिल हो गया है।

जोशी ने इस दिलचस्प मज़मून पर मजलिस जमा देने को
कहा, "मुहूर्त तो हो गया दोस्तो, अब देखें जगत माता के
भण्डार से कौन-कौन प्रसादी पाता है।"

बख्शी ने सिगरेट जलायी और मुखालफीन की तरफ धुआँ
छोड़कर कहा, "जो लक्ष्मी के ज़ोर से इस कलजुगी देवी को
रिझायेंगे, भेंट चढ़ायेंगे, वही खुशकिस्मत मुरादें भी पाएँगे।"

जौहरी जो सचमुच में माता का भगत था, सुनकर गुस्सा
खा गया, पर बड़ी शायस्तगी से बोला, "बख्शी यार, तुम्हारे
भले के लिए कहता हूँ, तुम बाल-बच्चेदार आदमी हो, आपस
की थुक्का-फज़ीहत में किसी देवी-देवता या पीर-औलिया की
शान के खिलाफ़ कुछ कहना ठीक नहीं।"

मन-ही-मन सहमकर बख्शी कुछ जवाब न दे पाया
सक्सेना ने पूरा ही इलाज कर देना मुनासिब समझा। 'दो
जिसके इलाही दरबार में बादशाह अकबर जैसों ने सिर
दिया..."

सूरी किसी ड्राफ्ट पर काफ़ी देर से काटा-पीटी कर
था, सिर उठाकर कहा, "डरा दे, डरा दे कनकव्वे साले अ

बच्चे को। खाने-पीने को देवी का भगत बना फिरता है। अबे जानता भी है, आजकल घर-घर जोत जगाने वाली जिस देवी का प्रताप है वह शेर को सवारी वाली दुर्गा माता नहीं, खनकते नावें वाली काली माई है, कलजुगी माई।"

भारद्वाज जो खुद खप्परवाली से डरता था, मज़मून बदल-कर बोला, "यार सक्सेना, तम्बाकू-फरोशों की गद्दी लगेपे में भी कब तक दुलत्ती झाड़ती है, अब यही देखना बाकी है।"

सक्सेना ने सिर झुका तीर का वार सँभाल लिया, "अपना-अपना नजरिया ही तो है दोस्त! हमसे पूछो तो अफसरान को तो लगेपे में भी लगेपा नहीं। फिर जिसका जिक्र तुम कर रहे हो वह तो खुदा के रहम से अभी हाथ-पांव से दुरुस्त है। दोस्त लंगेपा है तो हम कम तनख्वाह पाने वालों को, जिनकी दो टांगें भी एक के बराबर समझो। पैसे दिये दूध-राशन के तो एक टांग गई—फीस दी बच्चों की तो दूसरी भी नकारा।"

मनमुखानी ने शरारत से सक्सेना की ओर देखा, "सब परेशानियों और जख्मो पर एक ही मरहम काम करता है प्यारे···!"

भवानी बाबू ने बातचीत का रुख पहचान सक्सेना के बहाने मनसुखानी के मुंह पर गट्टा रख दिया, "परेशानियो का तज-किरा करने के लिए क्या लंच टाइम काफी नहीं?"

जोशी की एक छोटी-मोटी झड़प बड़े बाबू से हो के चुकी थी। ढिठाई से कहा, "बड़े बाबू, जहाँ यार-दोस्त मिल बैठेंगे, वहाँ पर चकल्लस तो चलेगी ही।"

फिर शर्मा को आँख मार दी, "दोस्त जहाँ तवाइफ वहीं

साज़िन्दे।"

सुनकर सूरी को मज़ा आ गया। "जोशी यार खूब टिकाई है, पर यार, जहाँ छम्मो और उसके साज़िन्दे होंगे वह तो कोठा होगा लोलियों का और यह ठहरा खिदमते-खलक का दफ्तर।"

भवानी बाबू ने एक ज़हरीली नज़र फेंकी और बिना कुछ कहे-सुने बाहर हो गये।

सूरी बुड़बुड़ाया, "काहे का हैड-बाबू! हैड-यतीम है हैड-यतीम। जहाँ सच कहने-सुनने का मौका आया, पकड़ा लोटा और चल दिये टट्टी फिरने।"

आधे से ज्यादा लोग चुप बने रहे, सिर्फ भारद्वाज, शर्मा और जोशी के गुस्ताख़ कहकहे बेशर्मी से कमरे में गूंजते रहे।

यदुवंशी ने फाइल रखने के बहाने पास बैठे माथुर को कानी मारी तो सूरी और भड़का, "बता तो सही आँख मारकर कहना क्या चाहता है यार को, सुलेमान! मर्दम-शुमारी करवाकर देख ले शाजो-नादिर कोई मर्द बच्चा, मिल जाए तो मिल जाए, नहीं तो बहनचोद कौम ही जनखों की हो गई है। मैं तेरी खुशामद, तू मेरी और वह उसकी! मैं तुम्हारी ठुड्डी चूमूं, तुम मेरी और फिर दोनों मिलकर ऐसी तिकड़म लड़ाएँ कि बहाने-बहाने किसी की मुंडी ही खसोट लें।"

माथुर ने पुराना नुक्ता इस्तेमाल किया, "सूरी उस्ताद, तुम्हारे कहे मुताबिक तो मालूम यह होता है कि दुनिया-की-दुनिया ही ज़लील है। भाईजान, ऐसे दिलजले न बनो कि लोग तुमसे सिर्फ गाली की ही उम्मीद करें।"

सूरी हँसा, "यार कलमघसीटू, बाँध ले गाँठ मेरी बात··· आदमी को गाली नहीं गोली लगती है। चाहे अम्ल की हो या

जमालगोटे की। चाहे कुनैन की हो या पिस्तौल की।"

ग्रांच-की-ग्रांच ठठाकर हँसने लगा तो माथुर ने भी हार मानने से इन्कार कर दिया। "गुरू, दुनिया की नंगई और जलालत की बात तो तुम ऐसे करते हो जैसे इसीसे तुम्हारा दिन-रात का वास्ता हो। ग्राखिर हर बार लौट-पलटकर इसी की माला जपने का कुछ सबब तो होगा।"

"बड़ा दूध का धुला बनता है, साले जैसे मालूम न हो कि नंगई ग्रौर धोखाधड़ी इस ज़माने में गुनाह नहीं—हर ग्रादमी का निवाह है निवाह…।"

माथुर ने हाथ का कलम नीचे रख दिया, "सूरी उस्ताद, ग्रभी भी दुनिया में कुछ सच्चाई ग्रौर ग़ैरत बाकी है। एक-दूसरे की कमज़ोरियाँ उछालने से ही सब पाक साफ़ नहीं हो जायँगे।"

"वाह प्यारे, दिल्ली वाले साचे महाराज, क्या गिलोरी पेश की है! साले हर संड-मुस्टंड, हमा-शुमा, गधा-टट्टू ग्रपना-ग्रपना चोला बदल जरनैली सड़क पर मोटरें दौड़ाता फिरता है—तुम्हारे खयाल में सच्चाई ग्रौर करम की वजह से। मूत दे यार ग्रपनी बात पर ग्रौर याद रख, ग्राज के काला बाज़ार में सिर्फ़ काली कारस्तानियों से ही तरक्की मिलती है ग्रौर इन्हीं से ख्वाबों के महल हकीकत बनते हैं। चाहता है लूटना मज़े इस ज़िन्दगी में तो ब्रादर मेरे, मोहरे रख ग्रौर मोहरे उठा। रिश्वत दे ग्रौर रिश्वत ले।"

भवानी बाबू एकाएक कमरे में दाखिल हुए तो कसे हुए चेहरे की रस्सी बटी थी। ग्राते ही सख्त ग्रावाज़ में कहा, "काम करने की बजाए दफ्तर में बैठे-बैठे गन्दे खयालातों का इज़हार करने ग्रौर दफ्तर का माहौल बिगाड़ने की इजाज़त सरकार

मुलाज़िमों को नहीं देती।"

बड़े बाबू की हैडक्लर्की आवाज़ पर लमहा-भर तो सूरी भवानी बाबू को घूरता रहा, फिर हो-हो कर हँस दिया। "क्या 'रूल' निकाला है माँ के पोदनों ने! जैसे 'फन्डामेन्टल' की किताब सूरी ने न पढ़ रखी हो। बहनचोद, मेरी बातों से दफ्तर का माहौल बिगड़ता है और जो लेन-देन, ठेके-कमीशन के शाही धन्धे दफ्तर में दिन-रात चालू हैं वह तुम्हारे कहे ब्रह्मचारियों के खेल हैं न।"

"सूरी उस्ताद, बड़े बाबू का कतई यह मतलब न था। बेकार झगड़ा-झड़प करने से फ़ायदा दोस्त!"

सूरी ने एक मसखरा हाथ टेबल पर झटक दिया, "अबे ओ अर्जी-नवीस, इकन्नी के लटके में सौ का फायदा उठाना चाहता है।"

भवानी बाबू के बर्दाश्त की इन्तहा हो गई—हुक्म किया—"बकवास बन्द करो।"

सूरी ने भवानी बाबू की आँखों में सचमुच लपलपाती आग-सी देखी तो आपे से बाहर हो गया, "चोर की दाढ़ी में तिनका भैये! हमींपर रौब गाँठता है। यारी, दोस्ती और गुलाब-पाशों के ज़ोर 'इन्क्वारी' की बोलती भले बन्द हो गई हो हैड-बाबू, पर दुनिया भी यहाँ बैठी-बैठी झक नहीं मारती। बड़े बाप-वाला अवस्थी, अवस्थी का साहब टंडन और क्लर्क पाशा भवानी बाबू—इन सबने मिलकर सयासी गुर्गों के 'थ्रू' जिस-जिसको 'गूं' के बालूशाही खिलाए हैं, यारो हुक्म करो तो उस पर भी रोशनी डाली जाए।"

भवानी बाबू ने अजीब वहशियाना-सी बेबसी और तड़प

से कलमदान में से कलम उठाया और लिखनें के लिए वर्क खींच लिया।

सूरी भोंडेपन से हँस दिया, "इस कलम में स्याही-ही-स्याही है, क्लर्क-पादशाह दम-खम नही।"

बात हाथ से निकलती देख जियालाल बाबू अपनी कुर्सी से उठे और सूरी के पास आ बड़े खुशामदाना अन्दाज़ से कहा, "सूरी उस्ताद, जो बेधड़क गुर्दा तुमने पाया है वह तो लाखों में एक को भी नसीब नहीं 'पर यार अपने साथियों की ऊँच-नीच में सुनी-सुनाई उछाल उनकी खिल्ली उड़ाना कोई बहादुरी नहीं।"

"सीनियर हिसाबराम सूरी लोगों से बहादुरी के तमगे माँगने नहीं जाता और न ही वह तुम्हारी तरह खोपड़ियों की खाद में ज़हर के पौधे उगाता है। जो कहना होता है सरे-बाजार कहता है।"

"दोस्त, हम छोटे मोटे क्लर्कों की क्या बिसात! हम सब तो किसी बड़े हुजूम की रेल-पेल में फँसे हैं···।"

सुनकर सूरी को भवानी बाबू से कुछ ऐसी हमदर्दी हुई कि पछतावे-ही-पछतावे में खाँसी उठ आई। एक बलगमी थूक खिड़की से बाहर दे मारी और पतलून को ऊपर करते-करते बुड़बुड़ा दिया—"सच तो यह है हिसाब-बाबू कि हममें से हर-एक चूतिया है और हरएक उल्लू का पट्ठा। यूं तो हमसे भी बड़े उल्लू के पट्ठे मौजूद हैं जो हरामज़दगी में उन गुरुघण्टालों के भी बाप हैं जो फोकट की चुसकियां खिलाकर ख़लकत के महबूब बने फिरते हैं!!"

तिन-पहाड़

तिन-पहाड़

साँझ की उदास-उदास बाँहें अँधियारे से आ लिपटीं। मोहभरी अलसाई आँखें झुक-झुक आईं और हरियाली के बिखरे आँचल में पत्थरों के पहाड़ उभर आए। चौंककर तपन ने बाहर झाँका। परछाईं का-सा सूना स्टेशन, दूर जाती रेल की पटरियाँ और सिर डाले पेड़ों के काले उदास साए। पीली पाटी पर काले अक्खर चमके 'तिन-पहाड़,' और झटका खा गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ रुकी।

नीचे उतर पुरानी आँखों से चारों ओर देखा। वही 'तिन-पहाड़,' वही एक-दूसरे से लगी पहाड़ियाँ, वही वह-वह आती

हवाएँ, हवाओं के भरे-पूरे पर। इंजिन की बेसाँस चीख ने फिर अपनी सीट की ओर लौटा दिया। खिड़की से आँखें बाहर गड़ाईं तो रात का अँधियारा गाड़ी के साथ-साथ भागने लगा— आगे…आगे…और आगे।

तपन…! तपन…! वह तन-मन को छू-छू जाती आवाज़, वह छलछलाता कण्ठ, वे भर-भर आती आँखें, तारों की पातें गाड़ी के साथ होड़ लेती रहीं। दूरी मापते गाड़ी के चक्के कोस पर कोस फलाँगते रहे और दूर अँधेरे में चमकती लौ का-सा एकाकी मुख बार-बार आँखों में झलक मारता रहा। पहचानने के पल…वे जानने के पल…

गाड़ी सँकरी गलीघाट पर आ रुकी। खोए-खोए मन नीचे उतर सामान उठवाया और किनारे लगे स्टीमर की ओर पग बढ़ा दिए।

डेक के कोलाहल से बेखबर रेलिंग पर झुक पानी के भँवर देखते-देखते मन न जाने कैसा हो आया। गहरे गहन जल में बँधे भाग्ग-सा यह स्टीमर और एक संग पार उतरने को बाट जोहते अगणित अपरिचित मुसाफिर। गलबहियों-सी उमड़ती-छल-छलाती लहरों-भरा गंगा का पाट ओझल होता गया और दूर किनारों के संग-संग तारों-टँके आकाश का पर्दा झिलमिलाता चला।

वही दिशा, वही राह, वही अँधेरा चीरता स्टीमर की तेज़ रोशनी। पर मणिहारी घाट के प्लेटफार्म पर खड़ी छाया आज वहाँ क्यों नहीं होगी। यहीं खड़े-खड़े उस रात बदली बरसी थी। इसी रेलिंग के सहारे सिहरते मन में बूँदें सरसी थीं। इसी पर झुके मन को व्यथा आज फिर उस रात को लौटा-लौटा

लाती है। पर अब कौन लौट-लौट आएगा? कौन राह चलते मिल जाएगा? कौन आँखों के आगे बिछुड़ जाएगा?

दार्जिलिंग के नीले निथरे आकाश से बरसती कुनकुनी मीठी धूप। चाय की क्यारियों पर हँसती-थिरकती हवा। तब जाना था, फिर कभी मिलना नहीं होगा। उन प्रिय आँखों के आगे झुकना नहीं होगा।

धूप की उनड़ती छाँह में आँखों की गहराइयाँ, माथे पर टिका कुछ कहता-सा सुकुमार हाथ और ढीले बालों को चूम-चूमकर जाते हवाओं के हल्के आलिंगन। वे बरसते मेंह-सी लहरें—लहरों पर घिर-घिर आते फेन के बादल और तिस्ता के वक्ष पर बँधा लम्बा एकाकी पुल। रेलिंग पर से झुके उस दिन वे दो आँखें निर्मोही पानी के वेग में क्या ढूंढती होंगी, क्या खोजती होंगी?

गंगा के तीर सुनसान पड़ा मणिहारी घाट स्टीमर के किनारे लगते ही कोलाहल में डूब गया। ढेर-का-ढेर सामान कुलियों के कन्धों पर लद गया और उतावली से लोग गाड़ी की ओर बढ़ चले।

कुली के पीछे आते तपन के भारी कदम सहसा ठिठक गए। लैम्प की मद्धिम रोशनी में उभर आई काले कोट की बाँह पर उन्हीं दो आँखोंवाले मुखड़े का चाँद चमक आया। लम्बी घनी पलकें, साँवरा-साँवरा रंग और माथे पर गहरी लाल टिकुली। बालों के उलझे जाल पर गंगा की नमीली हवा थिरकती है और होंठों से कहती है... जया! जया!!

चौंककर देखा सामने कुछ नहीं था। बस देखने को ये आँखें ही मन की भटकानी थीं।

सामान टिका कुली ने बिस्तर बिछाया और मजूरी ले
उतर गया। डिब्बे के सामने खड़े-खड़े घाट की ओर देखा।
पानी के अँधियारे पाट पर सँकरी गली का वह चावभरा
टीमर बीत गए अतीत का-सा अकेला उदास दीखता था।

इंजिन की चुनौती से चौंक ऊपर पैर रखा। चिटखनी चढ़ा
देखा, गाड़ी के अपरिचित साथी बिछौनों में सोने की तैयारी
में थे। कपड़े बदल, बत्ती हल्की की और सिरहाने सिर डालते
ही बँधा-बँधा मना छलछला आया। बीत जाने को जब सभी
कुछ बीत जाता है तो क्यों दर्दीली स्मृतियाँ मन को बार-बार
सिहराती हैं? बार-बार तरसाती हैं?

यही गाड़ी उस दिन सिलुगड़ी खींच ले गई थी। यहीं किसी
की व्यथा जान लेने की राह बनी थी। इसीमें लेटे-लेटे उस रात
पहली बार वह बिलखता स्वर सुना था।

बिछौने में सिमटे-सिकुड़े पड़े थे कि किसी की सिसकियों
ने आ मन के द्वार पर थाप दी।

मुख उघाड़ चौकन्ने हो देखा। सामने की सीट पर कोई
रह-रहकर सिसकियाँ भरता था। सिरहाने पर ढुका सिर विव-
शता से काँप-काँप जाता था और गाड़ी की खड़खड़ाहट में से
बार-बार वही गीला स्वर इन कानों को छुए जाता था। ओढ़न
उतार जाने कैसी-सी घबराहट से उठ बैठे। कुछ पूछ लें, कु
जान लें कि नीचे पड़े दो मखमली स्लीपरों ने आँखों को वा
लौटा दिया।

फिर भोर वेला अकचकाकर जगे। खिड़की के उठे
से तीखी हवा बह-बह आती थी। आकाश में तारे गा
लें भरते थे और दूर लालिमा में नहाई व

चोटियाँ। एकाएक सब-का-सब ठिठक गया। खिड़की की चौखट पर झुका सिर बहुत छोटा, बहुत अकेला दीखता था। साँस रोके सोचते रहे—कौन मुख होगा! कौन आँखें होंगी!

कंगनोंवाली बाँहों ने पलटकर रजाई में सिर छिपा लिया तो मन-ही-मन सोचते रह गए—

इस एक ही कम्पार्टमेंट में संग-संग सफर करते कौन कहाँ भटकता है, किन गीली बिदाइयों के लिए आँखें भर-भर लाता है, यह कोई दूसरा तो नहीं जान पाता।

खड़...खड़...खड़...गाड़ी बिराने में दूरियाँ मापती रही और मुँदी आँखें छूट गई राहों पर भटकती रहीं।

नींद खुली तो काँच में से पतली सुहाती धूप मुँह पर बिछी आती थी। पहाड़ों के चेहरे जाने-पहचाने दीखते थे। उतावली से उठ कर कपड़े पहने और आँखें खिड़की से बाहर गड़ा दीं।

आखिरी दौड़ लगा गाड़ी सिलुगड़ी पर आ रुकी। फिर भीड़ मची, कुली बढ़े और खिलौना-सी रेल की लगेज-वॉन से सामान उतर गया।

प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े तपन मन-ही-मन पुराने क्षण दोहराते रहे। पुराने पल लौटाते रहे।

धूप में नहाई यही सुबह की बेला थी। छाँह तले बिछा यही प्लेटफार्म था। साथ लगी नन्ही-सी रेल यही थी। इन्हीं पाँव दो डग भर तपन आगे बढ़े थे कि खिड़की में से रातवाली दो आँखों वाला मुख झाँक गया। चाह हो आई पास जा कुछ कहें कि अपनी ही झिझक से अपने कम्पार्टमेंट की ओर लौट आए।

दूर-दूर फैले चाय-बगान, ऊँचे गम्भीर चुप्पी के पेड़, उदास-

...त दुकानों वाले पहाड़ी बाज़ार और गोरे-चिट्टे छोटी आँखों ... भोटिया बच्चे—बड़ी चौखटों में जड़े सचमुच के-से चित्रों ... दीखते थे।

तन्दारिया पर नीचे उतर देखा। कुरसी की टेकन से सिर लगाए वह आँखें मूँदे बैठी थीं। गोद में एक-दूसरे से गुँथे हाथ जैसे अपने को ही दिलासा देते थे।

लम्बी चढ़ाई चढ़ गाड़ी करसियोंग आ पहुँची। दूधिय गुम्बदों की छाँह तले खुला चौड़ा रिफ्रेशमेण्ट-रूम और प्लेट-फार्म को महकाती खाने की गरम महक से बहुत-से जन एक संग छुरी-काँटों में जा उलझे। खाते-खाते दायीं ओर मुड़कर देखा तो प्लेट पर झुकी फिर वही गम्भीर मुद्रा दीख पड़ी।

बाहर घंटी बजी। व्यस्त हो लोग अपने-अपने डिब्बों की ओर लौट चले। बिल चुका द्वार तक आए। जिज्ञासावश फिर मुड़कर देखा। कॉफी के प्याले को हाथ से घेर वह अब भी वैसे ही बैठी थीं।

टन···टन···टन···घंटी फिर बजी। जल्दी में कुछ ठीक-ठीक निश्चय नहीं कर पाए। बाहर जाते-जाते पलटे और पास आ विस्मय से कहा—

"गाड़ी चली जा रही है। आप क्या जाएँगी नहीं?"

वह न चौंकीं, न आँखें ऊपर कीं। ठिठकी-सी दृष्टि जै... क्षण-भर अपने रूठे हाथों को मनाती रहीं। तब उठीं और ... झुकाए-झुकाए ही बाहर हो गईं।

अंबरसे बादलों की पातें फैल-फैल धुन्ध बनने ल... पहाड़ों की चोटियाँ धुन्ध की ओट होने लगीं। नीचे के ...

खड्ड धुन्ध के असीम आँचल में खो गए। ऊपर के पहाड़ झुक धुँधलकी बाँहों में सो गए।

गाड़ी के पहिए बताशिया लूप से नीचे उतरने लगे। दूर-दूर फैले धुन्ध के फैलाव को मापती गाड़ी धरती पर नहीं मानो आकाश पर जा रुकेगी।

इंजिन अपने अन्तिम पड़ाव पर आ लगा तो दार्जिलिंग का प्लेटफार्म बादलों की बनी संगमरमर की लम्बी बालकनी-सा दीख पड़ा।

यात्रियों का समूह लगेज-वॉन के आगे आ जुटा। उड़ती नज़र से देखा, खम्भे के पास भारी कोट में लिपटी वह किसी गहरी सोच में खोई दीखती थी। खड़े-खड़े जाँचते रहे कोई लिवाने आया हो, पर कुली के संग जब वह अकेली ही बाहर निकल चली तो चाहने पर भी कुछ पूछ नहीं पाए। कई क्षण दूर जाते रिक्शा को देखते रहे, फिर कुली को रुकने के लिए कह रिफ्रेशमेण्टी रूम की सीढ़ियाँ चढ़ गए।

ऊपर बैठे-बैठे चाय के प्याले में पूरे दार्जिलिंग का चित्र उतार डाला। गाइड के पन्ने पलट मन-ही-मन कई नाम दोहराए—जलपहाड़, सिंगरापोंग, टाइगर हिल्स-चौरस्ता—कालिंगपोंग...

शाम हुए होटल पहुँचे तो खूब पानी बरस रहा था। कमरे में आ चाय ली। थकन उतारी। रात को खाने के लिए 'डाइनिंग-हॉल' पहुँचे तो असंख्य अनजान चेहरों में से वही राहवाला परिचित मुख पहचानकर ठिठक गए।

प्यार की-सी मीठी अक्तूबर की धूप में कंचनजंगा की

दोपहर की निथरी धूप आगे-पीछे, ऊपर-नीचे बिछी चली आती थी, और तेज़-तेज़ चलने को उकसाती थी।

किसी मीठे गीत के बोल गुनगुनाते अपने कमरे की ओर बढ़े। कोट उतार जरसी पहनी, बालों में कंघी घुमाई और हल्के मन बाहर निकल आए। बरामदे से हो डाइनिंग-हॉल की ओर मुड़े कि हाथ में कोट लिए, वह उसी रूठी चाल से उनके सामने से निकल गई। कुछ क्षण दूर होता साड़ी का मोतिया आँचल निहारते रहे, फिर अनमने-मन लंच ले कमरे में लौट आए।

खुली खिड़की से बाहर झाँका। होटल की अनबसी गुड़िया के सचमुच के-से घर-सी भर-भर धूप में चमकती थी। छाँह किए धूप की रंगीन छतरियाँ रंग-बिरंगी पाँखुरियों वाले कमलों-सी दीखती थीं और छोटी-छोटी फूलों की क्यारियाँ गुड़िया के पटोलों-सी इधर-उधर बिखर पड़ी थीं।

मन बाहर के लिए फिर मचल आया। चंचल पाँव राह के कंकर उछालते ऑब्जर्वेटरी हिल्स की ओर बढ़ गए। दूर सामने पहाड़ की चोटी पर मन्दिर की श्वेत पताकाएँ पहाड़ों के हरियाले सागर में तैरती पालवाली नौकाओं-सी लगती हैं और धूप-सनी हवाएँ रह-रह निमन्त्रण देती हैं···आओ···आओ··· !

क्लबघर के पास पहुँच ठिठक गए। बेंच पर सिमटा मोतिया आँचल और रुलाई में रह-रह उठता सिसकियों का स्वर।

कई क्षण असमंजस में खड़े-खड़े देखते रहे, फिर पास आ नीचे लटकता शाल उठाया और काँपते अनुरोध से कहा, "उठिए···"

वह बैठी-बैठी रोती रहीं।

आदर से बाँह छू सहारा दिया और पुचकार के-से स्वर में समझाया—

"इस राह तो बहुत जन आते-जाते हैं…"

और सयानों की तरह कन्धे पर हाथ दिए-दिए बाहर लिवा ले आए।

टन…टन · टन…

नौ के गहर-गम्भीर घंटों की टंकार। तपन चौककर बेंच से उठ बैठे। आकाश के परकोटे-सा चौरस्ता धुन्ध के चंदोवे से ढँक चला। दोनों ओर लगी बत्तियों की झालर गीली आँखों में *अतीत के स्वप्न-सी झिलमिलाने लगी और सिर पर झुकी रात* पहाड़ों के मौन में थरथराती रही।

व्यग्र हो मोड़ की ओर बढ़े और जंगले पर हाथ टिकाए देर तक माल की ओर देखते रहे। उसी सामने के किनारे से निकल वह धुन्ध के इस सागर पर तैर आएँगी। वही मुख…वही बाँहें…वही पानी में चमकते नगों-सी आँखें…

किसी रिक्शा की काली परछाईं घंटियाँ गुंजाती पास से निकल गई तो साँझ की सँजोई मन की प्रतीक्षा ने थककर पट बढ़ा दिए।

वह लौट गई होंगी—अब तक लौट गई होंगी। घड़ी देख होटल की ओर मुड़ चले। वह क्यों रोती हैं—बार-बार क्यों रोती है?

मोड़ पर पहुँचे तो पीछे से आती किन्हीं पाँवों की आहट तन को अकारण ही झुरझुरा गई। साँस रोके पल-भर को रुके

पलटकर देखा और ठगे-से देखते रह गए ।

एक हाथ जंगले की तार पर दिए वहीं इस ओर आ
थीं ।

वह पास आईं । क्षण-भर गहरी नजर से देखती रहीं, मानो हले परिचय को स्वीकारती हों, फिर हाथ का रेनकोट उनकी ओर बढ़ा दिया ।

ऊपर पहुँच डेस्क से ताली ली । डाक देखी और बिना कुछ कहे अपने कमरे की ओर ओझल हो गईं ।

काउण्टर पर हाथ रखे तपन कुछ देर खाली आँखों से लटकती तालियाँ देखते रहे, फिर कमरे की ओर हो लिए ।

वह खाने को आएँगी, नहीं आएँगी, यही सोचते-सोचते कपड़े बदले और डाइनिंग-हॉल की ओर बढ़ चले ।

दूर कोनेवाली मेज पर निश्चल आकार-सी वह शाल में लिपटी बैठी हैं । मन के संशय को पाँवों से ठेल पास आए । पल-भर प्रतीक्षा में खड़े रहे—बैठने को कहेंगी, फिर हारकर स्वयं ही कुरसी खींच ली ।

वह कुछ बोलीं नहीं—तनिक-सा देख आईं और बस । बालों के बीच खिची भाग्य-सी सीधी माँग कानों पर छितरे घूंघर में से चमकती हीरकणियाँ और गले से लगी नेह सी गुंथी माला । जितनी बार निहारते खाने में उलझे हाथ अटक अटक जाते ।

वह उठीं । तपन उठे । बरामदा पार कर कमरे की मुड़ीं तो ऐसे देख आईं जैसे उन्हें संग आने की अनुमत देती

तपन ने आगे बढ़ द्वार खोला । पर्दा उठा राह बना वह अन्दर आईं और सोफे के पास ही अटक गईं कि अपना

लिंग में क्यों अकेली हैं—क्यों रोती रहती हैं, पर इतना ही
, "यहाँ कब तक रुकेंगी ?"
अनिश्चय से सिर हिला वह छोटी-सी हँसी हँस दीं।
"सो तो नहीं जानती हूँ..."
भोलेपन पर तपन निहाल हुए।
थरमस में से कॉफी उँडेल जया की ओर बढ़ा दी औ
हँसकर कहा—
"रोना ही जानती हैं—क्यों न !"
"रोने में तो कुछ भी जानना नहीं होता।"
उत्तर में तपन ने झुककर दोनों हाथ चूम लिए।
आँखें न नत हुईं, न मुख पर कोई विस्मय झलका। बाँहों
के सेतु पार से अनझपी दीठ उसी तरह मुसकराती रहीं।
कल्पना में तपन कई बार अपरिचित वह घर देखते रहे
जहाँ से रूठकर वह यहाँ आई होंगी—कई बार अदेखा वह मुख
देखते रहे जिससे मान किए वह इस क्षण यहाँ बैठी हैं।
संझाती धूप में रसी-बसी वह ऐसे बैठी रहीं कि जलपहाड़
पर सचमुच मोहित हो आई हों। दूर नीचे दीखते दार्जिलिंग को
निहारकर बोलीं—
"यह जलपहाड़ तो आकाश की ओर जाती राह का अन्ति
पड़ाव लगता है..."
सुनकर तपन ने खिले-खिले पूछा, "और यहाँ बैठे हम...
बालों को हाथ से छू वह मानो अपने से कुछ कहती
फिर लम्बी साँस ले बोली, "हम तो इस प्लेटफार्म प
अपनी-अपनी गाड़ी की बाट जोहते हैं।"
वही पुराना उदास स्वर।

छाँह का पूर-पूर साँझ पश्चिम की लौ जा बनी। लैम्प पास्ट का क्रास सुनहले में झिलमिलाआकाश पर जा टँका और हवाओं के संग घिर-घिर आता अँधियारा धरती पर आ बिखरा।

किसी अदेखे अमंगल से घिरे तपन कुछ भी जान नहीं पाए। क्या कहें, कैसे कहें। फिर भरसक अपने को समझा, घड़ी देखी और संकोच-भरे स्वर में कहा—

"देर हुई—अब लौटना होगा।"

और उठकर हाथ बढ़ा दिया, "आइए।"

वह उठीं। उठकर हाथ लौटाया नहीं।

खड़े-खड़े जाने कैसी-सी आँखों से उनका सामना किए रहीं, तब झुकीं और उनसे आ लगीं।

उस रात तपन सोए नहीं। सोते तो लगता जगते हैं, जगते तो लगता सोते हैं। बार-बार कोई आकुल गलबहियाँ उनके पास घिरी आतीं, उनके साथ लगी आतीं।

सुबह नींद खुली तो देर तक सिरहाने पर सिर डाले बैठे रहे। तन-मन पर छाई कोई काँपती सिहरन रह-रह सहलाती, सुख देती और कम्बल से लिपटी बाँहों में घुल-मिल जाती।

चाय आई जान उठे तो आँखों में समूचा कमरा नया हो आया। जान पड़ा रात किसी मीठे निमंत्रण में बिता अभी-अभी घर लौटे हों।

हाथ बढ़ा खिड़की का पर्दा खींच लिया और चाय पीते-पीते बरखा धुले पहाड़ों को देखते रहे। आशीर्वाद-सी भर-भर बरसती धूप कांच में से लहराती कमरे के बीचोंबीच आ बिछी।

मुग्ध-से उठ सोफे पर आ लेटे और मुख पर पेपर की ओट

किए जितनी बार कल की बात सोचते, उतनी बार अधरों पर खिलती हँसी मन-प्राण में घुल-मिल जाती।

बैरा ने बिस्तर बना बैडकवर डाला, फूल बदले और गुसल तैयार कर खिड़कियाँ खोल दीं।

सुहाते गरम पानी से स्नान कर गुसल से निकले—कपड़े बदलने को हुए, फिर आलस से सोफे पर लेट गए और आँखों में जलपहाड़ वाली छवि देख-देख मग्न होते रहे।

"हुज़ूर, एक बजा चाहता है, लंच के लिए तैयार हों।"

वह किस रंग में होंगी—किस साड़ी में—

तैयार हो बाहर आए। डाइनिंग-हॉल की ओर बढ़े तो गमलों के पास वह उन्हें नीली साड़ी और पीले कार्डीगन में दीख पड़ीं। सरककर पास जा पहुँचे। अभिवादन के उत्तर में विहँसती वह चितवन देखते रहे जो रात-भर बार-बार याद आती रही। दार्जिलिंग की चारों दिशाओं में छाया यही सलोना-सांवरा मुख।

खाने को सामने बैठीं वह उन्हें और भी सुन्दर, और भी मीठी जान पड़ीं। लगा रात-ही-रात किसी उजियारी झील में नहा आई हों। उन्हें एकटक निहारते देख जया सलज्ज हँसी कि कहती हों—

'आज ही में क्या सब-कुछ पहचान लेंगे ?…'

लंच के बाद संग-संग बाहर आए। वह कुछ कहने को हुईं…रुकीं, फिर बोलीं—

"अब आज्ञा दीजिए। बाहर जाती हूँ—लौटकर मिलूंगी।"

कुछ कहने को तपन पहले झिझके, फिर सामना किए रहे और अधिकारभरे कण्ठ से कहा, "मुझे कहे बिना तो जाना

नहीं होगा।"

जया ऐसे हँसी कि तपन से बहुत बड़ी हो।

"इतनी देख-रेख कब तक किया करेंगे ?"

"जब तक भुठला नहीं जाएँगी···तभी तक।"

जया से कोई उत्तर नहीं बन पाया। खड़ी रहीं, फिर बरामदा पारकर धूप में जा बैठीं।

छतरी तले पास बैठे तपन को देखा तो धूप के दर्पण में समूचा आकार उजागर हो आया। गौरवर्ण, ऊँचा ललाट···

उमड़कर उनकी कुरसी की बाँही छू दी और आग्रह से पूछा—

"घूमने चलेंगे···?"

अपनों के-से स्वर में पूछा, "कहाँ जाना चाहेंगी ?"

वार्च-हिल, बॉटानिकल-हैपीवैली···

वह मन-ही-मन कोई दूसरा नाम टटोलती रहीं, तब आग्रह से कहा—

"सिंगरापोंग चल सकेंगे···?"

पास झुक तपन जाने कैसे अनुराग से देखते रहे, फिर पूछ-ताछ के लिए डेस्क की ओर खो गए।

जया बैठी-बैठी उनके उजरे रंग की झलक देखती रहीं कि आँखों पर कहीं से श्यामल घटा घिर आई और साँवला-सलोना चेहरा पास झुक आया—

"जया ! जया !!"

वही कण्ठ···वही स्वर···

तपन लौटे।

"सिंगरापोंग बहुत नीचे है, लौटती बार कड़ी चढ़ाई है—

चढ़ सकेंगी ?"

वह खिलखिाकर उठ बैठीं।

"न सकी तो वहीं रह जाऊँगी।"

उजागर हो-हो आती वह दुपहरी नहीं थी, धूप में खिल-खिल आता आकाश का कोई स्वप्न था। आकाश की चूनर रह-रह पहाड़ों पर लहरती। पतली बलखाती राहें दो जोड़ीपाँव से लिपट-लिपट जातीं और दूर बैठी सयानी सखी-सी कंचन-जंगा हर मोड़ से, हर ठौर से मुसकरा जाती।

झुरमुटोंभरी बॉटानिकल की राह पर जया और तपन नीचे उतरते चले। ऊँचे घने पेड़ों तले बिछी मखमली कालीन पर बेल-बूटों से कढ़े रंग-बिरंगे फूल !

काँचघर के सामने पहुँच दोनों मुग्ध-से देखते रहे। किसी ठिठक गए स्वपन में आकाशपरी के बसेरे-सा चमचमाता काँच-घर और कतारों में सजे-बने फूलों के खिले-खिले मुखड़े।

धूप की बरखा में सरस तपन बोले, "सच, कभी इस जगह अपना घर हो तो···"

चाव-भरा यह कण्ठ सुन जया सिर हिला हँसी।

"चाहना जो इतनी सुन्दर हो वह पूरी तो नहीं ही होती।" सुनकर तपन सहसा सहम गए। कहने को कुछ ढूंढते रहे, ढूंढ़ते रहे, फिर हौले-से कन्धा छू लिया।

"ऐसी उदास बात क्यों कहती हैं, यह क्या मुझसे नहीं कहेंगी ?"

वह पहले चुपचाप खड़ी रहीं, फिर सँभलीं और विवश बोलीं—

"सभी क्या सभी-कुछ जान लेते हैं।"

हाथ से अंजोर तपन ने बाल चूम लिए—
"राह चलते क्या सब कोई सबको पहचान लेते हैं।"

पहरुओं से खड़े राजबाड़ी के ऊँचे पेड़ों के पास हो नीचे उतरने लगे तो धूप-छाँह की आँख-मिचौनी में पिछले व्यथा-सन्ताप सब भूल गए। दार्जिलिंग की लाल छतें पहाड़ की ओट होती रहीं और कलगी-सी बनी कंचनजंगा आँख-आँख चमकती रही।

जंगले पर हाथ दिए तपन ऊपर की ओर संकेत कर पूछते हैं—

"जानती हैं कहाँ से चले थे?"

वह नटखट-सी सिर हिला देती हैं।

"अपने होटल की छत पहचानती हैं?"

"दार्जिलिंग पर तो एक ही आकाश की छत है। उसे भी पहचानना होगा!"

तपन आँखों में प्यार सँजो हँस देते हैं।

चायबगान की एकाकी बलखाती उतराई सिंगरापोंग की ओर उतर चली। जितनी बार मोड़ आता, पीछे छूट गए पहाड़ और ऊँचे होते जाते। दार्जिलिंग की लाल छतों की थिलगियाँ कभी धुपेले बादलों की छाँह हल्की होती, गहरी होतीं और पतली पगडंडी अजानी-अदेखी मंज़िल की ओर भागती चली जाती।

बड़े-बड़े डग भर तपन पास आते। जया और तेज़ दौड़ती। तपन धीमे हो जया को आगे बढ़ने देते, फिर दौड़कर उनसे जा मिलते।

दूर-दूर फैले पहाड़ों के असीम सागर पर वह किसी नाव-
। तिरती चलीं। नीली साड़ी पर पीला कार्डीगन आकाश के
ुकड़े पर धरती के फूल-सा जँचता रहा और चमचम बरसती
धूप में जलपहाड़ वाला सपना फिर-फिर साकार होता रहा।

हर मोड़ पर मुड़ जया हाथ हिलाती हैं और कूदती-फलां-
गती नीचे की ओर दौड़ने लगती हैं। मन हो आता है दौड़कर
बाँहों में भर लें कि वह पगडंडी छोड़ पाथर की सँकरी पैड़ियों
में खो जाती हैं।

जया को तेज़-तेज़ सीढ़ियाँ उलाँघते देख तपन भयभीत हो
उठे। वह गिरेंगी···वह गिरेंगी···

दौड़कर उन तक पहुँच जाने को हुए, तब एकाएक उठे पाँव
ठिठक गए।

खड़े-खड़े कुछ भी समझ नहीं पाए। इस निर्जन में वह
कहाँ चले जाते हैं। किसके पीछे दौड़े जाते हैं। वह उनकी कौन
हैं—उनकी कौन होती हैं—पूतुल—पूतू···

माला-सी बनी चपटे पत्थरों की पैड़ियाँ पार कर जया साँस
लेने को रुकीं। पलटकर ऊपर देखा, तो हरियाले पर अंकि
वह मुख कहीं भी दीखा नहीं। कुछ देर खड़ी-खड़ी उनके आ
की राह ताकती रहीं, फिर उन्हीं सीढ़ियों ऊपर लौट चलीं।

पगडंडी के मोड़ पर पहुँचीं, तो राह किनारे घुटनों
सिर झुकाए तपन बैठे थे। पाँव की आहट सुनकर भी
हिले नहीं। खड़े-खड़े पल नहीं, जुग बीत गए। चाहा, ह
से छू कुछ कहें—पुकारें, पर झिझक से हाथ नहीं उठा।

तपन ने सिर उठाया तो सामने खड़ी जया को भ
कटकी बाँधे देखते रहे।

वह पास आई। स्नेह-सने स्वर में कहा—

"नीचे जाने का मन न हो तो यहीं से लौट चलें?

तपन कुछ बोले नहीं। बैठे-बैठे बाँहें फैला अपने से लगा लिया।

बाँहों से घिरी जया खड़ी रहीं कि तन-मन पर कोई पुरानी बीती लहर लौट आई—श्री···श्री···

रस में भीगी जया ने झुक अपने से लगा सिर सहला दिया और जाने कैसे कण्ठ से बोलीं, "याद जो सामने आ राह रोक ले उसे अनसुनी कर आगे जाना अच्छा नहीं।"

अस्फुट स्वर में तपन ने सिर हिला दिया।

"क्या अच्छा है, क्या अच्छा नहीं—यही आज नहीं जानता।"

वह हाथों की अंजुरी में तपन के दोनों हाथ भर पास बैठ गईं जैसे कोई पुराना ऋण लौटाती हों और सगेपन से कहा—

"जो बीत गया सो ही अच्छा है, सो ही अपना है···"

"और जिसे बीत जाना है···"

सुनकर वह कुछ कहने जाती थीं कि सहसा आँखों पर हाथ रख लिया और व्याकुल-सी भर्राए कण्ठ से यही दोहराती चलीं—

"जिसे सचमुच में ही बीत जाना है आज वही दिन है—वही दिन है—"

इस बार तपन नहीं, तपन के सामने जया सिर झुकाए बैठी थीं और किसी अदीखते दर्द के आगे रह-रह सिर धुनती थीं।

चायबगान के बड़े साहब के बंगले तक पहुँचते-पहुँचते

साँझ गहरा आई।

बाहर बरामदे में बैठे रौस सैलानी अतिथियों को देख आनन्दित हुए।

"इस एकान्त घर में आपका आना प्रीतिकर है, निश्चित हो थकन उतारें।"

कृतज्ञ हो तपन ने धन्यवाद किया और चाय के लिए प्रार्थना की। रौस अतिथियों को ड्राइंग-रूम में लिवा ले आए। खानसामा को चाय की आज्ञा दी और उनसे दार्जिलिंग-प्रवास की बात पूछते रहे। थकी-सी साँवरी जया ने जाने क्यों उन्हें अपनी बेटी एडना की याद दिला दी, वह साफ रंग नहीं, सीधे सुनहरे बाल नहीं—तब भी इस अपरिचित-अजान चेहरे में उन्हें अपनी ही बेटी का चेहरा दीखता है।

जया ने जूते निकाल पांव कालीन पर रख लिए तो अँगुलियों पर पड़े छाले देख रौस दुखी हुए।

"लौटने को क्या घोड़े साथ हैं?"

चिन्तित हो तपन ने इन्कार किया।

रौस घड़ी देखने लगे। पैदल राजबाड़ी पहुँचते रात हो आएगी और इतनी चढ़ाई यह इन पैरों से नहीं चढ़ पाएँगी।

फिर तनिक रुककर कहा—

"लौटना ज़रूरी न हो तो रात-भर यहीं रुकें···"

तपन निर्णय नहीं कर पाए, क्या कहें। असमंजस में जया से पूछा—

"चल सकेंगी?"

जया ने सिर हिला दिया, "नहीं।"

तपन मानो अब भी इसे सहमति न समझे हों। फिर

गम्भीर स्वर में पूछा—

"आज यहां रुकेंगी ?"

गृहस्वामी की ओर देख मीठे स्वर में बोलीं—

"ऐसे कृपा-भरे निमन्त्रण को क्यों लौटाऊँगी !"

उत्तर में रौस हँस पड़े।

उनके आग्रह की स्वीकृति-भर।

चाय ली। बारी-बारी से अन्दर जा मुँह धोया। नमक-घुले पानी में पांव डाल थकन उतारी और ड्राइंग-रूम में आ बैठे। दीवारों पर से झाँकते दो तरुण चेहरे बरबस आँखें अपनी ओर खींच लेते हैं। रौस खड़े भले-से लगतेहैं और कुरसी पर बैठी उनकी संगिनी और भी सुन्दर, और भी आकर्षक।

जया रौस की ओर देखती हैं—समय है जो रौस के पुराने मुख पर बीत गया। समय है जो इस एक चित्र में, इस एक फ्रेम में ठिठका खड़ा है।

रौस मानो मन की बात भाँप गए हों। हँसकर कहा—

"एक साथ मुझे देखेंगी,—इसे देखेंगी तो कुछ भी पहचान नहीं पाएँगी।"

तब स्वयं ही बात बदलकर कहा—

"टहलना चाहेंगी ?"

क्यारियों में कटी फाँकों-सी पतली राहों बंगले के चारों ओर वे घूमते रहे। फाटक पर पहुँचे तो रेलिंग पर हाथ रख रौस बोले—

"यहाँ से देखें—सामने खड़ी कॉटेज सागर पर तैरते किसी पोत-सी दीखती है।"

खिड़कियों और दरवाजों से छन-छन आती बत्तियों की

…में समूची कॉटेज सचमुच किसी जहाज़-सी जान पड़ती

…जया मीलों फैली चाय की क्यारियों पर बिछे अँधियारे …तकती रही, फिर गम्भीर स्वर में कहा—

"इस एकान्त सुनसान में दूर-दूर फैला अँधेरा अँधेरे का …गर दीखता है।"

रौस बड़प्पन से हँस दिए।

"सच तो यह है कि ऐसा नहीं है। हाँ, मैं अपनी बेटी को …याद कर अँधेरे में इन क्यारियों को सागर बना लेता हूँ और सोच-सोचकर याद करता रहता हूँ कि जहाज़ पर बैठी वह इस दिशा की ओर बढ़ी आ रही है।"

"इस दुलार से जिन्हें याद करते हैं, वह भाग्यशालिनी हैं।"

"बेचारे इस पिता को तो दूसरा कोई काम नहीं। जो आँखों में हमेशा छोटी-ही-छोटी लगती थी वही बेटी अब ब्याह कर लौटेगी।"

पिता के वात्सल्य का सत्कार कर पूछा—

"नाम क्या है, जान सकती हूँ?"

"एडना!" रौस नाम ले स्नेहित हुए।

"चंचल, नटखट! अब कैसी लगती होगी, नहीं जानता। हाँ, आप-सी गम्भीर और सौम्य तो कभी नहीं।"

खाने पर दो मेहमानों में बैठे रौस कलकत्ता पहुँचती अपनी एडना और उसके अनजान पति की बात सोचते रहे। इसी मेज़ पर इसी तरह बैठे वह अपनी बेटी और दामाद के आने से अकेले नहीं रहेंगे और अकेले हो जायेंगे।

खाने के बाद रौस अतिथियों को कमरे दिखाने ले आए…

गैलरी में आमने-सामने खुलते दरवाज़ों पर विदा ली।

"आपको रात सुखद हो।"

"आपको भी…"

मुड़ने को हुए कि जया का आग्रह-भरा स्वर सुन पड़ा—

"इस कमरे में एक प्याला कॉफी के लिए प्रार्थना कर सकती हूँ ?"

रौस पहले अचम्भित हुए, तब तपन की ओर देख उत्साह से कहा—

"क्यों नहीं…क्यों नहीं…!"

खानसामा को बुला कॉफी के लिए आज्ञा दी, हाथ से पर्दा उठाया—

"आइए।"

तपन ने अँगीठी के सामने कुरसियाँ खींच दीं।

रौस हँसे। अपने ही घर में अतिथि हो रहा हूँ—जया अँगीठी के पास झुकी लकड़ी की डाँड से आग लहकाती रही। कॉफी आई जान उठीं। प्यालों में उँडेल आगे की ओर कुरसी पर बैठ पहली बार रात-भर के लिए अपने कमरे को निहारा। आग की कौंध में दीखा कि कमरे में सब है जो पूर्ण है, सम्पूर्ण है।

तपन की ओर मुड़ कहा—

"यह कमरा नहीं, कमरे का चित्र लगता है।"

गृहस्वामी चमत्कृत हुए। प्रशंसा-भरे स्वर में कहा—

"आप-सी ही आपकी कल्पना भी।"

तपन हँसे नहीं, न जया की ओर देखा। एक आँख रौस की ओर देखा और आँखें लौटा लीं।

गृहस्वामी बच्चों के-से इन तरुण अतिथियों को देखते रहे

और इनके छोटे-छाटे मनमुटाव और झगड़ों की वात सोच मन-ही-मन हँसते रहे। कभी वह भी ऐसे ही थे, ऐसी ही जूली थी…

आज्ञा ले उठते हुए कहा—

"आप लोग थके हैं, आराम करें।" तव जया का धन्यवाद किया…

"एडना और आप में कुछ भी समानता नहीं, फिर भी आपको देख ठीक उसी की याद आती है।"

जया सिर हिला मुसकरा-भर दी।

दुविधा में तपन भी गृहस्वामी के संग उठ खड़े हुए। आशा किए रहे कि रुकने को कुछ संकेत देंगी, कुछ पूछ लेंगी, पर वह तो रात के लिए कामना करती थीं।

"रात सुखद हो…"

"और आपको भी।"

तपन कमरे में आए। सिर तले कुशन रख देर तक अधलेटे रहे। वार-वार सिगरेट सुलगाते और अँगुलियों में ही वुझ जाने देते।

घोर सुनसान से घिरी यह कॉटेज और कॉटेज का यह नितान्त अकेला कमरा। छत पर से झूलती वत्ती का शेड दीवारों पर हल्का-सा साया विखराता है और अँगीठी में जलती सुनहली आग फर्श की सीव जगमगाती है।

अँगीठी के आगे वैठीं वह अव भी उसी डाँड से लकड़ियाँ हिलाती होंगी। मस्तक पर काले वालों की रात उसी तरह लहराती होंगी।

उठकर तपन द्वार की ओर वढ़े। पर्दा उठा गैलरी में

आए। सामने के द्वार पर पर्दा वैसे ही झूलता था। वह खड़े रहे, खड़े रहे—चाहा कि हाथ से हल्की-सी थाप दें, पर कोई गहरी झिझक तन-मन में अटक गई।

लौट उसी खिड़की में आ खड़े हुए। बाहर देखा। दूर-दूर बिछा अँधेरा, अँधेरे पर जड़ा और अँधेरा, और काली स्याह वीरानी में सांय-सांय करती तीखी सर्द हवाएँ। हाहाकार करते सन्नाटे पर क्षण-क्षण फुंकारता कोई अदेखा भय रेंग-रेंग खिड़की की चौखट पर चढ़ता आया। कनात लगा पर्दा खींच दिया। फिर ठगे-से, घबराये-से कई क्षण पलग के पास खड़े रहे। तब गृहस्वामी का ढीला जोड़ा उठा कपड़े बदलने लगे।

बत्ती बुझाई। लेटे। सपने-सी दो आँखें कमरे में देर तक टिमटिमाती रहीं। जो राह चलते मिली थीं वह आज उन्हीं के संग इस अनजान घर में ठहरेंगी, यह कब सोचा था। बॉटानिकल से नीचे उतरते ही कब जाना था कि मीलों नीचे हरियाली में छिपी इस कॉटेज तक पहुँच जाएँगे।

सहसा आँखों के आगे पूतूल के होस्टल का ऊँचा फाटक घूम गया। थकन ने नींद में बेखबर कर दिया तो धीमे हल्के पाँवों कोई पास आ खड़ा हुआ। जान लिया, वही पास चली आई है। हाथ से घेर पास कर लिया और प्यार से पुकारा—

"पूतू···पूतूल···!"

वह खिलखिला दी। उनके माथे पर हाथ फेर बोली—

"मैं तो पूतूल नहीं···"और हाथ छुड़ा अँधेरे में विलीन हो गई।

उठ बैठे। हाथ फैला आस-पास टटोला। यहीं थी—यहीं थीं···

खिड़की का पर्दा खींच काँच में से बाहर देखा—वही पहले का-सा अँधेरा और अँधेरे पर अंकित वही मुख।

हारकर फिर सिरहाने पर सिर डाल दिया। आँखें मूंदीं कि छोटी-सी गूंज कान में काँप गई।

'तपन···! तपन ··!'

'कौन पुकारता है?···कौन?' सहमकर उठ खड़े हुए। द्वार लाँघ गैलरी में आ खड़े हुए। अन्दर बत्ती जली है···

पर्दा उठाया। लैम्प की छाँह में तकिए पर सिर डाले वह ऐसे पड़ी थीं कि सोना चाहती न हों और बैठे-बैठे नींद में बेबस हो गई हों।

फिर वही स्वर सुन पड़ा।

वह पड़ी-पड़ी उनका नाम लेती हैं···

पास जा पूछा, "जगी हैं।"

स्थिर पलकें हिली नहीं, केवल होंठ हिलते रहे।

"नहीं···नहीं···श्री ऐसे नहीं···ऐसे नहीं···"

ऐसे विकल स्वर सुन तपन अकुला गए। व्यथा-भरे दुलार से एक बार फिर पूछा, "किसे पुकारती हैं?"

वह मानो बेसुधी में ही यह स्वर सुनती हों। उमड़कर बाँहें फैला कहती चलीं, "श्री दा ऐसा नहीं करेंगे···ऐसा नहीं करेंगे···"

एक बार चाहा, हाथ से झकझोर जगा दें, फिर विमूढ-से अपने कमरे को लौट गए।

भोर हुई। तपन ने आँखें खोलीं, फिर मूंद लीं। आज के बाद तो इस कमरे में जगेंगे नहीं। गई रात मन से निकल फिर

आँखों में तैर गई···वह किसे पुकारती थी? श्री कौन है···? कौन है?

कहीं से मीठे स्वर की लहर ने उस अधकच्ची नींद को हिला दिया।

"अन्दर आ सकती हूँ?"

आँखें खोल तपन उठ बैठे। हाथ में ट्रे लिए वह द्वार पर खड़ी थीं। तपन अचरज से देखते रह गए। यह कमरा क्या उनके अपने घर का है और वह भी क्या इस घर की कुछ होती हैं।

"आइए।"

ढेर-से ढीले बालों में वह कल वाली साड़ी और कार्डीगन में सुव्यवस्थित-सी पास आईं। मेज पर ट्रे रख पास खींच ली और प्यालों में चाय उँडेलने लगी।

तपन तकिए पर कोहनी टेक अपलक उनकी ओर तकते रहे। लगा नित्य ही वह यहाँ बैठी हों, उनके लिए चाय बनती हो और नित्य ही वह यहाँ बैठे उन्हें निहारते हों। श्री · श्री ··

जया ने प्याला आगे किया।

तपन हिले नहीं। प्याला लेने को भी हाथ बढ़ाया नहीं।

हौले-से अधिकार-भरे स्वर में जया ने पूछा—

"कुछ भूल हुई?"

तपन ने अब भी आँखें नहीं झपकाईं, केवल सिर-भर हिला दिया।

हाथ का प्याला नीचे रख जया टुकुर-टुकुर उनकी ओर देखती रहीं। तब एकाएक तपन की गम्भीर मौन दृष्टि के आगे अस्थिर हुईं। उठकर पास आईं और अपराधी के-से स्वर में कहा—

"मुझसे कुछ कहेंगे नहीं ?"

तपन अव भी कुछ वोले नहीं ।

"राह चलते मिली हूँ, क्या इसी से कुछ नहीं कहेंगे ?"

चाहते रहे—रात की वात पूछ लें, जो उन्हें जानना चाहिए वह जान लें, पर होंठों तक आ शब्द जुड़े नहीं ।

तपन की आँखों में इस मौन उलझन को जैसे वह पहली वार पढ़ सकी हों। जया कुछ कहने जाती थीं फिर, हाथ से उनकी आँखें ढाँप दीं और देर तक उनके माथे पर मुख झुकाए वैठी रहीं ।

धूप से उजियारे वरामदे में गृहस्वामी नाश्ते के लिए अतिथियों की प्रतीक्षा में वैठे हैं। ताज़े मेज़पोश पर लगा नाश्ता, मेवे और दूध-मक्खन। दो खिले-खिले चेहरे देख रौस सुखी हुए।

"रात आराम कर सके ?"

विनम्र हो दोनों ने धन्यवाद दिया। काँच पर के महीन पर्दों में से धूप सहज-सहज वरामदे को गरमाने लगी। खान सामा के अभ्यस्त हाथ चुपचाप सेवा करते रहे।

नाश्ता समाप्त हुआ। रौस धूप लेने लगे। जया उठ खिड़ से वाहर देखने लगीं और तपन चौखट पर झुके जया को त रहे। आज के ये क्षण फिर लौटेंगे नहीं।

तपन उठना चाहते हैं, जाने के लिए गृहस्वामी से लेना चाहते हैं, पर जैसे इस वरामदे में ठिठकी सुवह उनके ही विखर जाएगी।

उठकर जया के पास आ खड़े हुए। कई क्षण तक देखते रहे, फिर हौले-से कन्धा छू दिया।

"अव हमें चलना है।"

धीरे गति जया रौस के पास आई और आदरपूर्वक झुक-कर कहा—

"आपकी कृपा कभी भूल नहीं सकूँगी।"

रौस ने उन भाव-भरी आँखों में बहुत-कुछ पढ़ा। लगा, वह किसी कठिन क्षण में अकेली ही जूझती हों।

रौस ने सयाने कण्ठ बहुत-सा आश्वासन दिया—

"कभी भी आने का मन हो, यहाँ का निमंत्रण सदा आपके लिए!"

तपन ने कृतज्ञता जता हाथ आगे बढ़ा दिए।

"आप दोनों आनन्दित हों!"

"गुडबाई···गुडबाई···!"

मोड़ से पीछे मुड़कर देखा तो हरियाली में उगी कल्पना-सी कॉटेज धूप में उजराती थी और फाटक पर खड़े रौस किन्हीं छूटते क्षणों की तरह रह-रह हाथ हिलाते थे।

सिंगरापोंग, राजवाड़ी, राजवाड़ी का बाजार—सब पीछे छूट गए। विक्टोरिया फाल्स के छोटे-से छाँह-भरे पुल पर सुस्ताने को रुके। नीचे पत्थरों की ओल पर पड़ते पानी की बूँदें उड़-उड आती थीं। पास लगे केले के पात पानी की बौछार से काँप-काँप जाते थे।

जंगले के सहारे खड़े दोनों बड़े नाम वाले विक्टोरिया फाल्स के छोटे दर्शनों पर हँसते रहे। तब नीचे बैठ जया ने तपन के हाथ से अपनी जूती ले ली। पाँव में डालते हुए कहा—

"जितने कोस इन्हें उठाए रहे हैं उतने जन्मों में भी इसका ऋण नहीं उतार पाऊँगी।"

तपन उलाहने से देखते रहे···

जिसे अपना सौभाग्य मानता हूँ, उसे ऋण करके पुकारेंगी।"

"साख से परे जो हो उससे उऋण तो नहीं ही..."

मुख उठा तपन की ओर देखा तो देखती रह गईं।

आँखों में जो था वह शब्दों से परे था।

होटल पहुँच जया डेस्क पर रुकीं। डाक पूछी। पत्र हाथ ं लिए तपन से आज्ञा माँगी।

'लंच के लिए न आ पाई तो जान लें सिगरापोंग की थकन उतारती हूँ।"

तपन ने आँखें नहीं लौटाईं।

"शाम को भी न दिखीं तो..."

वह अर्थ-भरी गम्भीर आँखों से उन्हें देखती रहीं...

"जब नहीं दीखूंगी, वह वाली शाम आज नहीं।"

तपन अपने कमरे में आए। गुसल लिया और लेटे-लेटे सुस्ताते रहे।

लंच के लिए तैयार होते न देख बैरा ने पूछ लिया...

"हुजूर, हुक्म करें तो लंच यहीं...?"

सिर हिला अनुमति दी।

नींद से उठे तो घड़ी चार बजाती थी। चाय ली, तैयार हुए और बाहर चले आए।

दूर से देखा—बरामदे में से हो वह काउन्टर की ओर च जाती थीं। पाटवाली साड़ी पर सफेद शाल था, और पं झूलती बालों की गूंथ थी।

तपन पास आ खड़े हुए। पहली बार उन सलोनी अंगुलि ें मोती जड़ी अँगूठी देखते रह गए।

वह तपन की ओर मुड़ीं और आग्रह से बोलीं—

"जाने से पहले एक बार सूर्योदय देखना चाहती हूँ—चल सकेंगे?"

उत्तर में तपन ने रिसेप्शनिस्ट से लैण्डरोवर के लिए तय कर लिया और जया को लांज की ओर लिवा चले।

वह बैठी और हँस दी।

"आपको तंग किया करती हूँ…"

"पूछने वाला कोई होता नहीं हूँ, पर क्या जल्दी ही लौट जानेवाली हैं?"

लगा, आँखें वे छलछलाई हैं। सँभलीं और सिर हिलाकर कहा—

"बुलावा आ जाने से तो जाए बिना होगा नहीं।"

"घर में कौन-कौन हैं…?"

वह मुसकराई, "माँ है जिसने दूर पार की इस पराई लड़की को पाल-पोस इतना बड़ा कर दिया…"

मन का कौतूहल रोक गम्भीर हो पूछा—

"कोई और भी…?"

जया लम्बी अनझपी दृष्टि से तपन को देखती चलीं, तब सिर हिलाकर कहा…

"अब दूसरा कोई तो रहा नहीं…"

तपन इस क्षण में समूचे हार गए। जी हुआ—उठकर पास खींच लें और इस एकाकी उदास कण्ठ को चूमकर कहें—

मैं तो हूँ…मैं तो हूँ…!'

सुनसान ठिठुरती रात में लैण्डरोवर की गूँज होटल के मौन

को कँपा गई तो तपन चौंककर नींद से उठ बैठे। चार। ड्राइवर को रुकने का संकेत दे भारी गरम कपड़े पहने। ओवरकोट ले जया के कमरे की ओर बढ़ गए। द्वार पर धीमी थाप दी—एक बार···दो बार। अन्दर की बत्ती जल उठी तो जान लिया जगी हैं।

वह पूरे कोट में बाहर आईं। सिर पर स्कार्फ था। बाँह का सहारा ले नीचे उतर चलीं। ड्राइवर ने सलाम किया और आगे का कपाट खोल दिया।

"हुज़ूर, ऊपर सर्दी होगी···मेम साहिब के लिए कम्बल रख लेना होगा···"

तपन सीढ़ियाँ उलाँघ गैलरी पार कर गए और कम्बल ले लौट आए।

"असुविधा हो तो पीछे बैठ सकूंगा···"

"नहीं, नहीं।"

ड्राइवर ने गाड़ी चौरस्ते पर उतार ली और लैण्डरोवर स्टेशन की ओर मोड़ ली। सड़क पर लगी बत्तियाँ रात को आँखों-सी टिमटिमा पीछे छूटती जाती हैं। माल···लोअर-माल···तारघर और स्टेशन का तिनराहा।

स्टेशन पीछे ठिठका रह गया। और गाड़ी की पतली लाइनों पर दौड़ती लैण्डरोवर बताशिया-लूप की ओर भागने लगी। आकाश पर चमचमाते ढेरों-ढेरों तारे और उनकी ओर मुख उठाए पहाड़ों के काले साए पहियों के साथ-साथ लहराते चले।

बताशिया-लूप पार किया तो दार्जिलिंग का शहर पहाड़ों की ओट हो गया। लम्बी सड़क के मोड़ पर वह ऊँचा स्टेशन

अँधेरे में लटकी बहुत बड़ी लालटेन-सा चमकने लगा। ड्राइवर ने गियर बदला और गाड़ी टाइगर हिल्स की ओर मोड़ ली। ऊँचाई से फरफराती ठंडी हवाएँ पास आ-आ कँपाने लगीं तो *जया की ओर झुक ठीक से* कम्बल ओढ़ाया तो मन-का-मन करुणा से भर आया।

रात-सी अकेली यह अपने अकेलेपन की सज़ा अपने को ही क्यों देती चली जाती हैं...

चक्करदार सँकरे घुमावों वाली चढ़ाई पार कर ड्राइवर ने गाड़ी सिंह-शिखर की चोटी पर रोक दी।

पलटकर नीचे देखा तो पहाड़ के अँधेरे में सरकती अगणित लैण्डरोवर की बत्तियाँ जुगनुओं-सी चमकती थीं।

"हुजूर, ऊपर चलें, बाद में भीड़ हो जायेगी..."

खुले छत पर से चारों ओर देखा। जान पड़ा, धरती के ऊँचे बुर्ज पर, खड़े हो आकाश का महल निहारते हों। सितारों-जड़ी महल की मेहराब से अभी कौन झाँकेगा...? कौन झाँकेगा...?

नीचे हलचल हुई। हॉर्न गूंजे और सिंह-शिखर का सूर्योदय देखनेवाली भीड़ का कोलाहल गहरा हो आया।

देखते-देखते धुँधले बादल पूरे पहाड़ पर छा गए। तारोंभरा आकाश छिपा, दिशाएँ छिपीं और पास-पास खड़े चेहरों के आकार भी छिप गए। सूयदोंय दिख सकेगा। शब्दों में बँधे अनुमान उसी धुन्ध पर तैरते रहे कि सहसा धुन्ध छँटी। और कई जोड़ी आँखें पूर्व दिशा में जा अटकीं।

अभी...अभी...तारों की लौ हल्की हो मानो मोतियों की लड़ी बन आई। सामने पूर्व में उजाले की लौ फूटी और किसी

खे हाथ ने पहाड़ों पर रोली छिड़क दी। दिन चढ़ गया···
दिय हो गया।

तपन ने बारी-बारी से दोनों पत्र उठाए—खोले नहीं, देखे-
र और रख दिए। पूतूल की तिरछी लिखावट और माँ के
सधे-सधाए पके अक्षर।

समूचा कमरा बेजान-सा दीख पड़ा। केवल मेज़ पर पड़े
दो पत्र दो जोड़ी आँखों की तरह उनकी ओर तकते रहे।

करने को कुछ न पा गुसल लिया। ड्रेसिंग-टेबल के सामने
खड़े रहे, खड़े रहे, तब पलटे और मेज़ पर से माँ का पत्र उठा
लिया। आशीर्वाद पढ़ जैसे सचमुच ही माँ की सुधि हो आई—
"तपू, दार्जिलिंग जा अपनी पहुँच भी लिखी नहीं। माँ की चिन्ता
का ध्यान कर चिट्ठी जल्दी दे देना···"

कई क्षण पत्र हाथ में लिए-लिए खड़े रहे। पास ही पूतूल
के अक्षर जैसे प्रार्थना करते रहे, 'मेरा पत्र नहीं पढ़ोगे, तपू···?'
तपन सिर हिला जैसे अपने से ही कहते रहे हों—
'नहीं, पूतू, आज नहीं···'

सोफे पर बैठे-बैठे सुबह की बात याद करते रहे। सूर्योदय
देख लेने पर आज क्यों आँखों में कोई रूप नहीं, रंग नहीं
उस सुनहले आलोक-भरे भोर के बाद कैसी यह आभाहीन फीक
दुपहरी है !

आँखें मूँद जया का मुख अपनी ओर लौटाया तो भी कु
दिखा नहीं। टाइगर-हिल्स पर छाई धुन्ध में राह टटोल
जया की दो बाँहें···

अपने को झंझोर उठ खड़े हुए। कपड़े बदले और ब

से हो जया के कमरे की ओर बढ़ गए।

द्वार पर हौले से आहट की—टक्...टक्। नौब घूमी, द्वार खुला और सलोनी बाँह ने सत्कार कर कहा, "आइए।"

लाल ड्रेसिंग-गाउन पर प्रिय मुख उन्हें किसी संझाई उदास शाम-सा जान पड़ा। देखते रहे, देखते रहे। तब नीचे लटकती दोनों बाँहों को हाथों में भर लिया।

वह बिना हिले-डुले ऐसी खड़ी रहीं कि सचमुच की न हों।

तपन झुके और उस उदास माथे को अधरों से छू धीमे से कहा—

"किसी से रूठकर मन-ही-मन इतना दुख पाना अच्छा नहीं।"

वह जाने कैसी हँसी।

लगा कुछ कहना चाहती हों और कह न पाती हों।

स्नेह-भरे कण्ठ से पूछा—

"कुछ कहना है ?"

हौले से पूछा—

"सच-सच कहेंगे..."

तपन ने सिर हिला दिया। जया उनकी ओर देखती रहीं, तब रुक-रुककर पूछा—

"अब क्या अच्छी नहीं दीखती हूँ...?"

सहसा तपन कुछ कह नहीं पाए। समझे ही न हों कि क्या पूछती हैं। तब हाथ से मुख उठा आँखों में झाँककर कहा—

"जैसी लगती हैं, वह क्या सच में ही कह सकूँगा...

वह पहले गम्भीर बनी तकती रहीं, तब खिलखिलाकर हँसने लगीं।

"कॉफी के लिए चलेंगी?"

"दूर नहीं···बस लांज में।"

वह अन्दर गईं। लौटीं तो ज़री की पाटवाली गुलाबी साड़ी पर पशमीने का शाल लिए थीं। सलोने मुख पर धुले-धुले रूखे बाल किन्हीं काली किरणों के जाल-से बिखरे थे।

लांज में बैठ कॉफी के लिए आर्डर किया तो मेज़ पर हाथ फैला जया चौकन्नी-सी चहुँ-ओर देखती रहीं। तब कुछ सोच पर्स खोला और छोटी-सी डायरी निकाल ली। कोई हिसाब देखती हैं, किसी का पता ढूंढती हैं या कोई दिन-तारीख देखती हैं। तपन कुछ भी जान नहीं पाए।

कॉफी आई जान पर्स की ज़िप खींच दी और मग्न-सी प्यालों में कॉफी उँडेलने लगीं। तपन की ओर देख कुछ कहने को हुईं कि केतली से कॉफी नीचे गिरती चली। तपन क्या कहते थे सुना नहीं। उन्होंने हाथ से केतली ले नीचे रख दी तो भी हाथ उसी मुद्रा में उसी तरह हवा में अटककर रह गया।

हाथ छू नीचे कर दिया और दुलार से कहा—

"किस सोच में खोई हैं?"

वह सजग हुईं। कवर बदल बैरा ने ताजी कॉफी ला दी थी। धन्यवाद कर प्यालों में चीनी डालने लगीं। फिर आँखें नीचे किए-किए ही कहा—

"कॉफी तक बनाना भूल गई हूँ···"

लांज से उठ दोनों बाहर आए तो होटल की ढलती दुपहरी मौन हो आई थी। छतरियों की छांह तले कुरसियाँ सभी खाली

थीं। हिली-मिली गले लगी सहेलियों-सी धूप-हवाएँ अठखेलियाँ करती थीं।

आज ही···आज ही तो···दूर से दीखा नहीं। अब भी क्या ऐसा ही मुख होगा···वही आँखें···वही मुसकराहट। जया···अब कौन उसे दुलार से पुकारेगा···? अब जया नहीं···पराजया हो गई हूँ···

किसी ने पुराने सगे कण्ठ से पुकार कन्धे पर हाथ रख दिया।

"जया!"

तपन···नहीं···नहीं···

घबराई-सी उसने सामने देखा तो तपन पास कुरसी पर बैठे थे और अपने पर झुकी कोई दूसरी आकृति कन्धे पर हाथ रखे थी।

वही स्वर...

मुख उठाया, देखा, आँखें मूँद लीं। श्री नहीं···यह श्री की छाया है···

श्री ने दुलार से पुकारा—

"नहीं पहचानती···!" कुछ भी उत्तर नहीं आया।

कुरसी खींच पास बैठ गए और हाथ छू पूछा—

"मेरा पत्र मिला था···?" न 'हाँ', न 'ना', न आँखों की झलक। पत्थर की आँखों से सब देखा किया।

श्री चिन्तित हुए। स्वर में कोई पुराना दुलार भर कहा—

"माँ तो बेटी की चिन्ता में सूखी जा रही हैं।'

फिर भी वह मौन।

याचना के स्वर में बोले—

"मुझसे अपराध हो जाने से...उसकी सज़ा क्या माँ को दोगी ?"

जया ने इस बार भी कुछ सुना नहीं।

"मुझसे राग करोगी—मैं झेलूँगा, पर माँ..."

विवश-से दो हाथ उठा जया ने आँखों पर रख लिए, तो अँगुली पर वही पुरानी मोती जड़ी अँगूठी दमक गई।

श्री खड़े रहे। चाहा एक वार बाँह आगे कर जया का सिर सहला दें, पर वेबस-से तपन की ओर देखते रह गए।

श्री कमरे में लौटे तो एडना आराम में थी। बैठे-बैठे सिगरेट जलायी। छोड़ दी। फिर जलायी। आँखों पर रखे जया के विवश निरीह हाथ, सम्मोहन का एक तार—एक कड़ी कहीं दूर जा पड़ी।

स्नेह-सत्कार से जिसे बहुत-बहुत मानते रहे, उससे क्यों कर क्षमा पा सकेंगे। जानते थे—जानते थे—फिर भी—फिर भी सिरहाने पर बिखरे एडी के सुनहले बालों में जैसे कोई अनुराग का छोटा-सा सूरज चमकता हो।

सोचा था—सभी कुछ सोचा था—बार-बार सोचा था पर मोह-भरी बाढ़ तो सब बहा ले गई। असंख्य वार मन को रोका था—नहीं—नहीं—पर मन की आँखें तन की बाँहें दोनों एक संग गलबहियों में जा घुलीं। न माँ का मुख याद रहा, न अपना वचन, न वचन से बंधी जया।

चार वर्ष पहले की साँझ याद हो आई।

श्री खिड़की के सामने खड़े थे। जया के आने की आहट पा मुड़े।

"एक बात कहोगी, जया…"

"पूछिए, श्री दा…"

"दूर चला जाऊँगा तो भी क्या याद करोगी ?"

जया मेज़ पर बिखरी किताबें सहेजती रहीं। श्री को पास आया जान आँखें ऊपर कीं और मीठे स्वर में कहा—

"आँखों से ओझल हो जाते ही कोई मन से भूल जाता होगा, श्री दा !"

श्री ढीले बालों की छाँह, चमकती दो आँखें देखते रहे।

जया हँसी।

"कुछ और पूछना है, श्री दा ?"

श्री खिड़की से बाहर देखते रहे, फिर उलाहने के-से स्वर में कहा—

"मेरे लौटने तक तो किसी की घरनी न बन जाओगी ?"

जया ने इस बार न आँखें झुकाईं, न लौटाईं। तब पलकों से दो बूँदे टपक गईं।

हाथ से घेर श्री ने पास कर लिया और दीर्घ काल तक उस मीठे मुख पर आँखें गड़ाए रहे।

रात खाने पर श्री कुछ बोले नहीं। जया चुपचाप परसती रहीं और माँ बैठी-बैठी दोनों को निहारती रहीं।

हर दिन की तरह श्री ने लड़की को चिढ़ाया नहीं, खिजाया नहीं, तो हँसकर कहा—

"कानू, आज क्या फिर इस सिरफिरी ने लड़ाई की ?"

"इससे क्या लड़ता ही रहूँगा—अब तो यह बड़ी हुई।"

बेटे के कथन में कोई उलाहना-सा सुन पड़ा। कानू की ओर देखा, फिर सहज बुद्धि से सिर झुकाए बैठी लड़की पर आँखें

गड़ा दीं।

रात माँ लड़की के कमरे में आईं तो वत्ती नहीं जली थी और अँधेरे में जया विछौने पर औंधी पड़ी थीं। हाथ से हिलाया। उठी नहीं तो लाड़ से तरेर कानू को आवाज़ दी।

"इधर तो आ, वेटा! इस वेला रोना-धोना! तेरे गए पीछे इस पगली का क्या करूँगी—तू ही वता!"

श्री माँ की ओर नहीं, जया की ओर ताकते रहे।

"जाने से पहले इसका घर-वर ठीक कर जा, कानू! यह झंझट इस वुढ़िया के वश का नहीं।"

लड़की आँचल से रुलाई रोक ढिठाई से खड़ी-खड़ी देखती रही, तव आकर माँ की झोली में मुँह छिपा लिया।

रात सोने से पहले श्री माँ के पास आए। पैंतानें वैठ माँ के पाँव छू लिए तो वह मन-ही-मन खुश हुई।

श्री माँ को देखते रहे, तव अनुनय के स्वर में बोले—

"जो कहने जाता हूँ माँ, सो तो तुम पहले से ही जानती हो।"

माँ लेटी-लेटी उठ वैठीं।

"इस माथे में इतनी समझ कहाँ है, कानू···"

श्री कुछ कहने से पहले जैसे माँ का मन तौलते रहे, फिर अधिकारभरे कण्ठ में कहा, "वूआ माँ के ससुराल की इस दूर पार की लड़की को पाल-पोस वड़ा किया है तुमने, पर क्या इसी से इसे दूसरे घर व्याह दोगी···"

वेंटे ने मानो आधा युद्ध जीत लिया।

माँ घड़ी-भर लड़के को देखत रहीं, तव वोलीं—

"जिसे आँचल से लगाए रही हूँ, उसे कितना चाहती हूँ···

यह तो कहना नहीं होगा, पर एक बात तो कह, यह बात तेरे मन में आई कब ?"

श्री इस बार डरे नहीं। अधिकारपूर्वक कहा—

"माँ, ऐसी बात क्या एक दिन में सोची जाती होगी ..."

माँ जैसे जानती ही थी कि बेटा यही कहेगा।

हँसी। हँसती चली कि आशीर्वाद बरसाती हो।

"किसी दिन किसी दूसरी पर मन हो आने से..."

आश्वासन से उठ माँ का कन्धा छू लिया और उलाहना दे कहा, "बेटे को इतना ही जानती हो, माँ !"

माँ काफी देर श्री को निहारती रही कि पराए लड़के को अपनी लड़की के लिए जाँचती हो। तब एकाएक आँखें झुका लीं। जिस मुख को पराई नजर से देखती थीं, उसी पर कानू के बाबा की बरसों पुरानी छवि झिलमिला आई। क्या उन्होंने भी लड़की को बहू बना लेने की अनुमति दी ?

भोर हुई। घर-भर जगा तो झर-झर पानी बरसता था। काले-कजरारे बादलों की पाँत जैसे आँगन पर झुक आई थी। नहा-धो गृहिणी पूजा-पाठ में लगीं। बाहर आईं तो नित्य की भाँति लड़की ने झुक माँ को प्रणाम किया। आशीष दे माँ हँसी, फिर झूठ-मूठ गुस्सा कर कहा—

"अभी नहाई-धोई नहीं !"

लड़की चुपचाप स्नान को चली गई।

स्नान कर निकली तो दासी ने सुनहरी पटवाली साड़ी निकाल दी।

"कहीं निमन्त्रण है क्या, चारु ?" चारु मुँह-ही-मुँह

"इसकी दरकार नहीं, माँ··· जहाँ से आई है, वहीं लौटा दो।"

"हुआ-हुआ, कानू—इसे मेरे पास तो आने दो। आ, बेटी! देख खुकू, जिसने बचपन में ही धौल-धप्पे से तुम पर अपना अंकुश जमाया था, उसी ने आज तुम्हारे वर का नाम भी चुरा. लिया है···"

जया के हाथ में अँगूठी पहना माँ ने झुक माँ के पाँव छू लिए।

आँचरा गले में डाल लड़की माँ के आगे झुकी तो आँखें डबडबा आईं।

"कानू, तेरे लिए लड़की को विदा देने के दुख से तो छुट्टी हो गई, पर सास बनने का मेरा एकमात्र अधिकार तो सदा को छिन गया। आप ही पाल-पोस अब यह बुढ़िया इस बहू को क्योंकर डाँट-डपट सकेगी—यही समझ में नहीं बैठता···"

और लड़की के सिर पर हाथ फेरती रहीं।

उस रात लेटे-लेटे पुरानी स्मृतियाँ आँखों के आगे भीड़ लगा खड़ी हो गईं।

एडना को बाँह से थामे जेटी पर उतरे थे तो पल-भर को हाथ काँपा और स्थिर हो गया। माँ आएगी—क्या जया आएगी और अन्य प्रिय बन्धु···पर भीड़ में से तो कोई भी दीखा नहीं।

नीचे उतर किनारे आए तो असंख्य पराए चेहरों में से कन्हाई काका का मुख दीख पड़ा। पुरानी आवाज़ ने पुकारा—

"काका!"

"छोटे बाबू !"

कन्हाई ने चाहा, आशीष दें। होंठ हिले, पर बोल नहीं निकले।

"प्रणाम करता हूँ, काका !"

सिर हिला कन्हाई ने आँखें झुका लीं।

छोटे बाबू का सहारा लिए पतली-ऊँची एड़ी पर खट-खट चलती विदेसन-सी दीखती को दबी-दबी नज़र देख लिया।

"माँ कैसी है, काका···और अन्य प्रियजन···?"

"सभी ठीक हैं, छोटे बाबू !"

कपाट खोला। कार में वह बैठीं। छोटे बाबू बैठे और हाथ पकड़े उनका आदर-सत्कार करते रहे।

चार साल बाद घर की पुरानी गाड़ी और चिरपरिचित पुरानी सड़कें। हुगली के किनारे घाट—ईडन गार्डन। गाड़ी घर की ओर नहीं, डलहौज़ी की ओर मुड़ी तो पूछा—

"घर की ओर नहीं जाते हो, काका···?"

कन्हाई ने गला साफ किया।

"माँ की ऐसी ही आज्ञा है, छोटे बाबू !"

माँ की उपेक्षा जान जी सहम गया। बरसों बाद घर आने का चाव किसी भारी बोझ तले जा दबा। एडना के संग माँ ने घर जाने की अनुमति नहीं दी। सोच-सोच जाने कैसी-कैसी उदासी में जी धड़कने लगा।

कन्हाई ने कार ग्रेट ईस्टर्न के सामने रोक दी। दरबान ने कपाट खोला। सलाम किया और कन्हाई के देखते-देखते छोटे बाबू मेम साहिब को सहारा दिए आँखों से ओझल हो गए।

गाड़ी साँझ तक खड़ी रही। कन्हाई साँझ तक बैठे रहे। छोटे बाबू ने न उनकी खोज-खबर ली, न कार की तलब की।

रात को छोटे बाबू नीचे उतरे तो नौ बज चुके थे। कन्हाई ने कार सँभाली तो पास बैठ श्री ने लम्बी साँस-ली और धीमे से कहा—

"घर जाए बिना होगा नहीं, काका···"

जी में आया कुछ बात कहें, फिर रुककर इतना ही कहा, "सो तो जाना ही होगा, छोटे बाबू !"

ज्यों-ज्यों घर पास आता चला, मन में जाने कैसी दुविधा उपजती रही। क्यों डरता हूँ—इतना क्यों डरता हूँ ? जब दूसरा और कुछ नहीं कर सका तभी तो···पत्र पढ़ लेने पर भी माँ क्षमा नहीं कर पाई और जया···

गाड़ी फाटक में से हो घर के आगे आ रुकी। बरामदे में न कोई नौकर-चाकर दीखे, न माँ, न जया···

बरामदा पारकर अन्दर आए और माँ के कमरे की ओर बढ़ गए। वही पुराना कमरा। माँ के पास चारु के सिवाय कोई और नहीं। माँ क्या बीमार हैं ? जया कहाँ है ?

"माँ···!"

श्री ने झुककर माँ के पाँव छू लिए और सिरहाने आ कहा—

"क्या जी अच्छा नही है, माँ ?"

माँ ने सिर उठाया, आँखें खोलीं, फिर मूँद लीं।

"माँ कब से असुखी है चारु ?"

चारु पहले झिझकी, फिर हौसला कर कहा—

"आपकी चिट्ठी आने से ही, श्री दा !"

माँ पर झुके श्री अपलक माँ को देखते रहे, फिर कोई भी

र न पा जया के कमरे की ओर बढ़ गए।

पर्दा उठा अन्दर आए। कमरे-भर का सामान क्यों सहेज

या है। पलंग है, बिछौना नहीं। ऊपर उठी मसहरी है, फर्श

र कालीन नहीं और कोने में लगे टेबल पर कैलेण्डर की

अबदली पुरानी तारीख।

"चारु, सामान क्या हुआ ?"

"यह सब तो दीदी माँ ही सहेज गई हैं।"

"दीदी कहां हैं ?"

"यहाँ तो नहीं है, श्री दा !"

श्री झुंझलाए।

"सो तो देखता हूँ चारु, पर कहाँ हैं यह भी कहने को क्या

मां ने मना किया है ?"

"माँजी से ही पूछना होगा। छोटे बाबू, दीदी तो उसी दिन

से घर में नहीं..."

श्री रौबीली चाल माँ के पास लौट आए और गुस्सा हो

कहा—

"माँ चार साल बाद देश लौटने पर क्या इसी तरह उपेक्षा

की जाती होगी ?"

माँ उठीं और सिर हिला बोलीं—

"सच ही कहता है, कानू। जिस किसी को ब्याह कर

आने से वह अभागी लड़की आज तेरी आरती नहीं उतार सकी

इसी लज्जा में तो मैं आज मरूँगी।"

फिर बड़े कण्ठ चारु को पुकारकर कहा—

"वत्ती बुझा दे, चारु! आज जो आँखों को दीखता है उसके दीखते रहने से ही यह प्राण निकलेगा।"

अपराधी वने श्री अँधेरे में माँ के सिरहाने खड़े रहे। साँस रोके चारु दीवार से लगी रही। न माँ वोली, न वेटा ही।

घड़ी ने दस वजाये तो चारु ने मिन्नत के-से स्वर में कहा, "माँजी, क्यों दादा वावू के लिए कुछ परसना होगा?"

माँ ने उत्तर नहीं दिया। रुलाई रोकने को आँचल मुँह के आगे कर लिया।

श्री माँ के पास आए और हाथ से छूकर कहा—

"ज्वर कहाँ है, यह क्या मुझसे नहीं कहोगी, माँ?"

माँ का मौन टूटा कि नदी वह आई। सिर हिला रो-रो वार-वार कहने लगी—

"क्यों पूछता है? यह मुझसे अब क्यों पूछता है?"

हाथ वढा माँ को चुप कराते रहे।

"लक्ष्मी इस घर से मुँह मोड़ गई, कानू; और जीते-जी मेरा मरण हो गया। अब वह लौटकर नहीं आएगी। कन्हाई कहता है दार्जिलिंग की गाड़ी में वैठी तो व्यथा के मारे पहचान में न आती थी।"

जाने कितने दुःख-पश्चात्ताप से वेटे का कण्ठ भर आया। माँ से क्या कहें, कैसे कहें, कुछ भी समझ नहीं पाये। खड़े-खड़े कई देर तकते रहे, तव माँ के पास झुके और पाँव छू कहा, "अव चलता हूँ, माँ!"

माँ ने जैसे पहली वार जीवन में आग्रह किया—

"विना जाये नहीं होगा, कानू?"

श्री ठिठके। माँ के कथन को समझ फिर विवश-से चं

"नहीं, माँ।"

द्वार तक पहुँचे तो एक बार फिर माँ का भर्राया कण्ठ सुन पड़ा—

"कानू, क्या सच ही में उसे व्याहकर लाया है ?"

श्री मुड़े, माँ की ओर देखा और गम्भीर स्वर में बोले—

"ऐसी बात कहने से कुछ दूसरा नहीं हो जाएगा, माँ।"

और पीठ मोड़ ली।

एडना स्कूल की चंचल लड़की-सी दौड़ पापा के गले जा लगी। रौस बेटी का माथा चूम मुख निहारते रहे, तब पहली बार वह नया चेहरा दीख पड़ा जिसे एकमात्र बेटी के निर्णय ने अजान अपरिचय से उठा एकदम पास खड़ा किया।

"पापा, श्री से मिले···श्री, आप पापा हैं।"

श्री झुके, हाथ मिलाया। कुशल पूछी और सामना कर अपना अधिकार जता दिया।

रौस परीक्षक की दृष्टि से बेटी के चुनाव को जाँचते रहे, परखते रहे।

एडना ने पिता की नज़र भाँप मचलकर जैसे श्री की सिफा-रिश की—

"पापा !"

रौस हँस दिए। बेटी की ओर झुके। थपथपाया मानो अपनी ओर से निश्चिन्त हो जाने का संकेत देते हों।

"पापा ! श्री के लिए जैसा लिखती थी क्या वैसा ही आपने पाया।"

रौस श्री की ओर देख लाड़ से हँस दिए।

"वैसा ही।"

एडना ने बहुत-बहुत सगी मुसकान से श्री की ओर देख पूछा, "जैसा कहा करती थी क्या पापा वैसे ही नहीं ?"

गम्भीर मुख श्री मुसकरा दिए।

"वैसे ही।"

रौस मानो उस एक क्षण में जान गए हों कि जिस मुस्कान ने उनकी बेटी को जीत लिया होगा, वह उन्होंने देख ली है।

श्री ने सिगरेट भेंट की। लाइटर से जलाया तो अपनी बेटी पर समूचा अधिकार जमाए अपरिचित को देखते रहे। जिसकी दृष्टि नहीं, तन-मन में डूबी कोई अबूझी आसक्ति बार-बार एडना को अपनी ओर खींचती रही।

एकाएक बेटी के लिए रौस का स्नेहमय सम्बोधन सुन माँ का ध्यान हो आया। पर माँ नहीं वह तो जया है जिसके लिए माँ रूठी है और जया···जया आज यहीं हैं। उनके पहचानने से पहचानती नहीं, उनके बोलने से बोलती नहीं···

जाने क्या सोच उठ बैठे। कुछ देर को रौस से क्षमा माँग ली और हौले से एडना का कन्धा छू कहा—

"कुछ देर में लौटता हूँ।"

एडना पीछे से दूर तक श्री को निहारती रही, तब पिता की ओर मुड़ पूछा—

"पापा! सच-सच कहेंगे—श्री को देख क्या निराशा हुई?"

बेटी का चिन्तित स्वर सुन प्रशंसा में कहा—

"गम्भीर हैं, आकर्षक हैं और बड़े इंजीनियर हैं···"

एडना ने लाड़ से हाथ दे बीच में रोक दिया, "और पापा

एडी को बहुत-बहुत चाहते हैं...”

रौस अनुराग से छलछलाती बेटी को निहारते रहे, फिर हँसकर कहा—

“क्या सचमुच में ही इतना बूढ़ा हो गया हूँ कि देखकर इतनी बात नहीं जानूंगा !”

“पापा...!”

श्री को कहाँ देखा, कहाँ मिलीं, कहाँ बार-बार मिलती रहीं, रौस मानो अन्तर की आँखों से सभी कुछ देखते रहे। वे समूचे एकान्त क्षण भी जिन्होंने एक-दूसरे को जीत लिया, बाँध लिया।

मुख उठा सामने देखा तो रौस चौंक पड़े। दो दिन पहले के उनके अतिथि चले आ रहे थे। उठकर चाव से उनका अभि-वादन किया, अभिवादन लिया और एडना की ओर मुड़कर कहा—

“जया से मिलो, एडी ! मेरी बेटी एडना और तपन...?”

“आप कैसी हैं और आप !”

कॉफ़ी के लिए आग्रह कर पास ही बिठा लिया और हँ... कर कहा—

“आप दोनों के लौट जाने पर सोचता रहा कि एक ... दिन के लिए आपको रोक क्यों नहीं लिया !”

जया बारी-बारी से पिता-पुत्री दोनों की ओर देखती... फिर रौस की ओर मुड़कर कहा—

“पिता का सौभाग्य कभी जाना नहीं। उस एक ... ही जान सकी थी कि यही वह स्नेह है जो कभी ... जाता।”

तब एडना की ओर देखकर हँसी—

"आपके लिए आपके पापा का स्नेह देख मन-ही-मन आपसे ईर्ष्या कर आई थी।"

एडना लाड़ से पिता की ओर तकती रही और रौस मन में अंकित हो गई इस भावुक लड़की के मुख पर आँखें गड़ाए रहे।

तपन और एडना ने एक संग सामने से आते श्री को देखा। पास आए तो एडना ने परिचय दिया—

"मेरे पति।"

अभिवादन कर जया ने आँखें उठाईं तो अपलक-अपलक देखती रही, फिर तपन का सहारा ले उठी और एडना की ओर हाथ बढ़ा दिया।

"मिलकर खुशी हुई, अब आज्ञा दीजिए।"

व्यस्त हो रौस कुछ कहने जाते थे कि तपन ने सिर झुका आँखों में ही उनसे कृपा माँग ली और जया को संग ले चले।

एडना और रौस संशय से दूर जाती दोनों परछाइयाँ देखते रहे। ओझल हो जाने पर सिर हिला बेटी से कहा—

"उस दिन भी देखा था पर समझ नहीं पाया हूँ कि दोनों एक-दूसरे के क्या होते हैं। संग-संग होते हुए भी एक-दूसरे से दूर पराए···"

श्री एडना की ओर नहीं, रौस की ओर ताकते रहे जैसे कुछ पूछना चाहते हों। फिर गम्भीर स्वर को सहज बनाकर कहा—

"एडी, जिसकी बात तुमसे किया करता था यह वही पगली"

लड़की जया है जो माँ से रूठकर यहाँ चली आई है। ओह!"

एडना श्री की पुरानी माँ की बात सोच मुसकरा दी, जो बेटे का मनचाहा व्याह कर लेने पर घर आने की आज्ञा नहीं दे पाईं। वह ज़रूर लड़की से भी गुस्सा किये रहेंगी।

रौस हँसे नहीं। श्री की ओर देखते रहे। विश्वास न आता हो कि क्या सचमुच में वही लड़की है जिसकी श्री बात करते हैं। उनकी बेटी को जिसने व्याहा है वह उन्हीं की कुछ लगती है। क्या अजाने में ही उनके घर पहुँच गई होगी···संशय और शंका से जी भर गया।

घड़ी देखी और आज्ञा के स्वर में बेटी से कहा—

"नीचे पहुँचने को अब चल देना होगा···"

आँखों-ही-आँखों में एडना मानो श्री से कुछ पूछती हों पर उस क्षण अलग से दीखते श्री किसी सोच में खोए थे।

एडना ने एक बार फिर आग्रह से देखा तो सिर हिला विवशता से बोले—

"एडी,आज मेरा जाना नहीं हो सकेगा,आप दोनों चलें···" और सिर झुका सिगरेट जला ली।

पिता-पुत्री दोनों को चौरस्ते पर विदा दे श्री देर तक बेंच पर बैठे रहे। घोड़ों की टाप माल की ओर खो गई तो भी रौस का गम्भीर चेहरा और उस पर दो तीखी पारखी आँखें दीखती रहीं। एडना की राग-भरी आकृति आँखों के आगे आ-आ मचलती रही।

बैठे रहे। बैठे रहे। कैसा कड़वा बोझ है जो घर लौटते ही अपराध बन राह में आ खड़ा हुआ है। एक बार माँ से प्रार्थना कर जया को स्वयं माँगा था। फिर एडना से व्याह कर स्वयं

सब-कुछ भूठ कर लिया। जानते थे कि एक को पा सकने पर दूसरी से बिछुड़ जाएँगे। बचपन का संग छूटेगा, माँगकर लिया वचन टूटेगा...

धीमी चाल ऊपर आए। कमरा खोला तो एकबारगी एडना की अनुपस्थिति ने पाँवों को किसी असह्य विवशता से जकड़ लिया। शैया के पास खड़े-खड़े देर तक सोचते रहे—क्योंकर वह माँ को समझा सकेंगे। कुछ हो आता है जिसके आगे वचन नहीं रहते, आग्रह नहीं रहते—कुछ नहीं रहता। बस एक राग, एक प्यास।

जया के लिए माँ का दिया पत्र निकाल जेब में रख लिया।

खाने के लिए डाइनिंग-हॉल में आए तो आँखें अनजाने में ही जया को खोजती रहीं, पर न वह, न परछाईं से उनके संग-संग घूमते मित्र ही दिखाई दिए। याद नहीं पड़ता कभी वह चेहरा कलकत्ता में देखा हो। एकान्त अधिकार जमाए वह कौन होंगे।

खाना ले बाहर आए। एक पाँव बरामदे की ओर बढ़े, फिर जाते-जाते रुके और बाहर अँधेरे में टहलने लगे। चारों ओर फैले पहाड़ों के अँधेरे में एक बार नहीं अनेक बार जया की चिर-परिचित आँखें टिमटिमाती रहीं। जया...जया...! एडना से ब्याह कर ही लिया है तो क्या अपनी जया से कम स्नेह करने लगेंगे।

पर माँ ने तो ज़िद पकड़ ली है।

"कहे देती हूँ कानू, घर की बहू जो थी—वही रहेगी। ले-देकर उस साहिबन को परे कर, नहीं तो जान ले अन्न-जल ग्रहण किए बिना मैं ही अपनी जान दूँगी।"

कुछ सोच नहीं पाते—क्या करें, क्या कहें। शायद जया के लौट जाने पर माँ सँभलेगी।

ऊपर आए। अपने कमरे की ओर मुख किया, फिर सहसा पलट बरामदे में से हो जया के कमरे की ओर बढ़ चले कि पुल पर के एक किनारे से दूसरे किनारे जाते हों।

हाथ से द्वार खटखटाया, नॉब घुमाई।

"आ सकता हूँ ?"

जया का मीठा स्वर सुन पड़ा, "आइए।"

खुली खिड़की में खड़ी जया इधर मुड़ीं। पूरी आँखों से पहली बार श्री का सामना किया और हाथ से संकेत कर कहा, "बैठिए, श्री दा···"

मन-प्राण में पैठे संकोच में श्री मानो शब्द खोजते हों और पाते न हों। खुली उस निःसंकोच दृष्टि के सामने श्री चूके।

"मुझसे कुछ काम था, श्री दा···"

चाहा कहें, 'कैसी पराई बात करती हो, जया !' पर चुप रह गए।

"माँ ने तुरन्त घर लौट आने का आग्रह किया है···"

चिट्ठी हाथों में ले जया हँसी। पत्र खोला, आँखें झुका पहला पन्ना पढ़ा—दूसरा तब सिर हिला दिया···

"अब कहाँ लौटना होगा, श्री दा···!"

अपनी जया का ऐसा स्वर सुन जी भर आया। मन-ही-मन घिरकर कहा, "माँ ने कितना धिक्कारा है जया कि समझ ही नहीं पाता हूँ कि सचमुच मैं वही हूँ जो माँ को बहुत प्रिय था।"

जया कुछ भी बोली नहीं। गम्भीर मुख पर जड़ी दो

अभियोग-भरी आँखों से एक बार श्री को देखा और दृष्टि लौटा ली।

वह कठिन मौन-मुद्रा देख श्री शब्द ढूंढते रह गए, पर होंठ हिले नहीं।

बाहर द्वार पर आहट हुई। चौकन्नी हो जया ने सिर उठाया, खिंचे-खिंचे रूखे मुख पर जैसे कोई ढील तिर आई। उमगकर कहा—

"चले आइए।"

तपन श्री को देख ठिठके।

"क्षमा करें..."

तब जया की ओर झुक कहा—

"फिर चला आऊँगा..."

द्वार की ओर पलटे कि पीछे से जया का मीठा स्वर सुन पड़ा, "आपके लौट जाने का तो कोई कारण नहीं..."

तपन ठिठके रह गए। एक बार जया को निहारा, एक बार श्री को, तब भी झिझक से पाँव उठे नहीं। जया उठ पास चली आई और मुग्ध-सी हँस दी। तब तपन को लिवा ले आने की मुद्रा में हौले से बाँह छूकर कहा—

"श्री दा! माँ को लिख दें मेरा लौटना नहीं होगा।"

श्री अनजाने ही कठोर हो उठे। नितान्त अपरिचित तपन की बाँह पर जया का हाथ सह न सकने से उठ खड़े हुए और कठोरता से बोले—

"इतना अधिकार तो रखता हूँ कि पूछ सकूँ।"

जया ने आगे की बात नहीं सुनी। संकेत से टोक दिया—

"नहीं श्री दा, नहीं..."

कुछ सोच नहीं पाते—क्या करें, क्या कहें। शायद जया लौट जाने पर माँ सँभलेगी।

ऊपर आए। अपने कमरे की ओर मुख किया, फिर सहसा लट बरामदे में से हो जया के कमरे की ओर बढ़ चले कि पुल पर के एक किनारे से दूसरे किनारे जाते हों।

हाथ से द्वार खटखटाया, नौब घुमाई।

"आ सकता हूँ ?"

जया का मीठा स्वर सुन पड़ा, "आइए।"

खुली खिड़की में खड़ी जया इधर मुड़ीं। पूरी आँखों से पहली बार श्री का सामना किया और हाथ से संकेत कर कहा, "बैठिए, श्री दा..."

मन-प्राण में पैठे संकोच में श्री मानो शब्द खोजते हों और पाते न हों। खुली उस निःसंकोच दृष्टि के सामने श्री चूके।

"मुझसे कुछ काम था, श्री दा..."

चाहा कहें, 'कैसी पराई बात करती हो, जया !' पर चुप ह गए।

"माँ ने तुरन्त घर लौट आने का आग्रह किया है..."

चिट्ठी हाथों में ले जया हँसी। पत्र खोला, आँखें झुक पहला पन्ना पढ़ा—दूसरा तब सिर हिला दिया...

"अब कहाँ लौटना होगा, श्री दा...!"

अपनी जया का ऐसा स्वर सुन जी भर आया। मन-मन घिरकर कहा, "माँ ने कितना धिक्कारा है जया कि स ही नहीं पाता हूँ कि सचमुच मैं वही हूँ जो माँ को बहुत था।"

जया कुछ भी बोली नहीं। गम्भीर मुख पर ज

अभियोग-भरी आँखों से एक बार श्री को देखा और दृष्टि लौटा ली।

वह कठिन मौन-मुद्रा देख श्री शब्द ढूँढते रह गए, पर होंठ हिले नहीं।

बाहर द्वार पर आहट हुई। चौकन्नी हो जया ने सिर उठाया, खिंचे-खिंचे रूखे मुख पर जैसे कोई ढील तिर आई। उमगकर कहा—

"चले आइए।"

तपन श्री को देख ठिठके।

"क्षमा करें…"

तब जया की ओर झुक कहा—

"फिर चला आऊँगा…"

द्वार की ओर पलटे कि पीछे से जया का मीठा स्वर सुन पड़ा, "आपके लौट जाने का तो कोई कारण नहीं…"

तपन ठिठके रह गए। एक बार जया को निहारा, एक बार श्री को, तब भी झिझक से पाँव उठे नहीं। जया उठ पास चली आई और मुग्ध-सी हँस दी। तब तपन को लिवा ले आने की मुद्रा में हौले से बाँह छूकर कहा—

"श्री दा! माँ को लिख दें मेरा लौटना नहीं होगा।"

श्री अनजाने ही कठोर हो उठे। नितान्त अपरिचित तपन की बाँह पर जया का हाथ सह न सकने से उठ खड़े हुए और कठोरता से बोले—

"इतना अधिकार तो रखता हूँ कि पूछ सकूँ।"

जया ने आगे की बात नहीं सुनी। सकेत में टोक दिया—

"नहीं श्री दा, नहीं…"

तब जाने क्या सोचा और नीचे झुक तपन के पाँव छू
ए ।

"जो आज दुर्दिन में मेरे सबसे अपने हैं, उन्हीं का अनादर
रेंगे, श्री दा…!"

श्री मानो बीच में ही रोक देना चाहते हों—

"जया !"

जया सिर हिलाती चली ।

"नहीं श्री दा, कुछ भी सुनूँगी नहीं । मन में आ जाने से ही जिस-तिस का अपमान करते चलेंगे, यह अधिकार आपको किसने दिया, श्री दा ?"

करवट ले तपन ने आँखें खोल लीं । अँधेरे में चमकती घड़ी की सुइयाँ…साढ़े तीन । उठ बैठे । लगा, साँस घुट रही है । खिड़की खोली, पानी पिया, फिर लेट गए ।

"श्री दा, आज जो मेरे सबसे अपने हैं, उन्हीं का अनादर करेंगे !"

बोल नहीं कि फूल हों ।

तपन बार-बार कई बार रोनेवाली दुबली-पतली लड़की का ऐसा गर्वीला स्वर सुनते रहे । पाँवों पर झुके कृतज्ञताभरे वे दो हाथ । इन्हीं पाँवों को छुआ था, इन्हीं को । ऐसे आदर का क्य सत्कार नहीं करेंगे ? सौ बार करेंगे । ऐसे चाहने वाले को प बार नहीं, सौ बार चाहेंगे । जया…जया…!

दिन चढ़े आँख खुली तो काँच में की धूप कम्बल पर आ गई थी । इतनी देर…। घड़ी देखी…साढ़े तीन । हाथ से हिल पर सुई हिली नहीं । चाबी उलटी-पलटी, कान से लगा
… कलाई से फीता खोल दिया ।

उठे, शेव की, गुसल लिया। कपड़े बदले और बाल बनाते देर तक अपने को दर्पण में देखते रहे। ऐसा कि पहले अपने को कभी देखा न हो। ऐसी रागभरी लड़की का अधिकार भी नहीं रख पाए। ऐसी प्यारभरी लड़की का मान नहीं रख पाए।

बाहर आए और जया के कमरे के आगे से हो डाइनिंग-हॉल की ओर बढ़ गए। केवल उन्हीं के टेबल पर नाश्ता लगा था। जगने में सचमुच बहुत देर हुई।

हाथ खाने में लगे रहे, मन कहीं और। वह मिलेंगी, वह दुलरा देंगे। स्नेह से समझा देंगे—जो बीत गया वह बीत गया, अब उसकी सोच क्यों करती हैं···क्यों ?

नाश्ता ले बाहर आए। लॉन में झाँका। धूप में देखा। फिर डेस्क की ओर लौट आए। नम्बर नौ के आगे उदास शून्य भाव से ताली लटकती है। जान लिया कमरे में नहीं है। पर कहाँ हैं ?··· कहाँ होंगी···? कहाँ गई होंगी ?··· लौटकर अनेक्सी के आस-पास देखा— चौरस्ते पर उतरती सीढ़ियाँ एक-दूसरे से जुड़ी-जुड़ी मौन पड़ी है। कहाँ होगी, किस ओर होंगी ?

ऑवज़रवेटरी की ओर ध्यान पड़ा और उसी ओर हो चले। ज़रूर वहीं बैठी होंगी। शायद हवाघर की उसी बेंच पर। जंगले की तार पर हाथ दिए चढाई चढने लगे। इस ओर पीठ होगी, नीचे लटकता साड़ी का पल्लू होगा और घुटनो पर पड़ा शाल···

हवाघर की हरी छत दीखने लगी तो आँखें नीचे झुका ली। पास पहुँच ही उनकी ओर देखेंगे, फिर बहुत प्यार से पुकारेंगे—

"जया !"

ऊपर आए। हवाघर की सभी बेंचें खाली थीं। लकड़ी की चौखटों पर लिखे असंख्य नाम और तिथियाँ काले-सफ़ेद अक्षरों में चमक रहे थे। जया और उनकी तरह और भी लोग एक-दूसरे के संग दार्जिलिंग में घूमते होंगे, याद में अपनें-अपने नाम लिखते होंगे—पर क्या कभी भी किसी को बता सकेंगे—जया के संग वह कौन दिन कहाँ-कहाँ घूमते रहे। वे दिन-तारीख क्या लकड़ी की इन चौखटों पर लिख सकेंगे···वे तो दूर-दूर मन में खुदे हैं।

चोटी पर पहुँच मन्दिर दीखा और हवा में लहराती ऊँची श्वेत पताकाएँ। इन्हीं में कहीं लुकी-छिपी लहराती एक साड़ी भी होगी।

चारों ओर घूम-फिर देखा। दक्खिन की ओर से नीचे उतरने लगे तो कई बार पीछे मुड़े। दौड़ती-भागती वह उसी उतराई पर उन्हें आ मिलेंगी।

सड़क के संग-संग पाँव चौरस्ते पर लौट आए तो कोने की बेंच पर पाँव टेक चौकन्ने हो चारों ओर देखते रहे। जहाँ भी हों, जहाँ भी गई हों—लंच के लिए तो लौटकर आएँगी ही।

एक···डेढ़···दो···वह नहीं लौटीं। शायद अपने कमरे में होंगी। ज़रूर होंगी।

सहसा आँखों के आगे सब साफ़ हो गया। वह कहीं और नहीं, श्री के साथ होंगी···होंगी···

जी से उठ कोई अनजानी घुटन गले में घिर आई। इतने घंटों तक जया को अपने पास···अपने साथ रखने वाले श्री जया के कौन होते हैं? कौन···?

झुँझलाकर होटल की ओर मुँह मोड़ लिया। ऊपर आए।

नौ नम्बर के सामने ताली उसी तरह लटकती थी।

लंच के लिए वह डाईनिंग-हॉल में नहीं है। होंगी—लंच के लिए नित्य की तरह आज भी देर से आएँगी। मन-ही-मन पुकारते रहे—जया! जया! कुछ मन कुछ खाया, कुछ छोड़ दिया।

बाहर आए तो दुपहरी की धूप क्यारियों पर ठिठक गई थी। कलवाली रंगीन छतरी तले जा बैठे। जहाँ से भी लौटेंगी, लौटकर यहीं आएँगी···

ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर हवा लहराती है, सरसराती है, तपन समूचे सिहरते हैं···हवा नहीं, जया का नरम कोमल हाथ उनके कन्धे को छू सिहराता है। धूप हल्की हुई, दुपहर दूर हुई, तब भी वह लौटी नहीं। प्रतीक्षा में व्याकुल मन को लगा कि जैसे आज-सा उदास और निराश दिन पहले कभी जाना ही न हो।

हारकर लांज में आ बैठे। कॉफ़ी के लिए आर्डर दिया। प्याला होंठों से छुआ तो घबराहट ने झकझोर दिया।

रात श्री से वह न लौटने की बात करती थी—क्या लौट गई होंगी?

क्यों वह पहले स्टेशन नहीं चले गए। दोनों गाड़ियाँ देख पाते···तीखे घूँट भर प्याला वहीं रख दिया। जल्दी-जल्दी नीचे उतरे, रिक्शा लिया और स्टेशन की ओर भाग चले।

एक के साथ एक लगी दुकानों की कतारें···आँखों को कुछ भी सूझा नहीं और मन में कोई काली आँधी उमड़ आई। गाड़ी जब भी छूटती हो वह उनसे बिना मिले नहीं जा सकेंगी · नहीं जा पाएँगी।

स्टेशन पहुँचे तो प्लेटफार्म के आगे रेल की पटरियाँ उदास

पड़ी थीं। रेलिंग पर हाथ रख खड़े रहे, फिर रिफ्रेशमेंट-रूम की सीढ़ियाँ चढ़ गए। क्यों नहीं ढूंढ सकेंगे···सकेंगे···

मेज-कुर्सियाँ सब खाली थीं। नीचे उतरे, कुछ सोचा और स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँच प्रार्थना की—

"छूट गई गाड़ियों के रिजर्वेशन चार्ट देख सकता हूँ?"

स्टेशन मास्टर पलभर तपन की ओर देखते रहे, तब प्रार्थना पर चार्ट आगे कर दिया। एक-एक कर सभी नाम पढ़े। फिर लम्बी साँस ले स्टेशन मास्टर को धन्यवाद दिया और होटल लौट आए। इस बार रुके नहीं। बिना संकोच-झिझक के रिसेप्शनिस्ट से जाकर पूछा—

"नौ नम्बर से क्या बाहर गई हैं?"

"सुबह सात बजे निकली थीं···"

"मालूम है कहाँ गई हैं?"

रिसेप्शनिस्ट सहज बुद्धि मन-ही-मन कुछ सोचते रहे, फिर सिर हिला विवशता जता दी।

"नहीं कह सकूंगा···उन्हें नीचे उतरते देखा-भर था।"

बरामदे से हो तपन अपने कमरे की ओर आए तो पाँव उठते न थे। उदास-निराश मन मानता न था कि वह अपने कमरे में हैं और जया नहीं। जया को अकेले कहाँ जाना था··· क्यों जाना था···

बुझे-बुझे हाथों अपने कमरे का द्वार खोला और जाने कैसे फीके मन निढाल हो सोफे पर जा गिरे। वह कमरे में नहीं··· होटल में नहीं···श्री के साथ हैं तो कहाँ हैं। बार्चहिल··· बताशिया···जलपहाड़···

उस दिन वहीं बैठी-बैठी हँसी थीं। मौन गम्भीर चेहरा

एकाएक धूप-सा उमड़ आया था। ऐसी सुहानी लड़की का मूल्य जो नही पा सके—दिनभर क्या उन्ही के संग घूमती रही होंगी ?···क्या फिर से सिगरायोंग गई होंगी···

लेटे-लेटे जाने कितनी बार वह प्रिय मुख आँखों के सामने घिर आया। कितनी बार वे बाँहें इन बाँहों के पास, जैसे राग-भरी अनुरागभरी गलबहियाँ हों···

आँख लगी तो देखा लैण्डरोवर में पास-पास बैठे वह टाइ-गर-हिल्स की ओर चले जा रहे हैं। रात है और नही है। ऊँचे आकाश पर दूध-सा उजाला है। चढ़ाई है। उतराई है। पर लैण्डरोवर धरती पर नहीं, पानी की-सी नीली धार पर भागती है। जया पास बैठी कभी रोती हैं, कभी हँसती हैं, कभी हाथ से छू खिलखिलाकर कहती हैं···

"तपू !"

तपन हाथ में घेर बाँहों में भर लेते हैं और माथा सूँघकर कहते है—

"जया !"

बाँहें इस ओर घिर आती है और उनसे लिपट-लिपटकर एक बार नही, सौ बार···बार-बार पुकारती हैं—

"तपन ! तपन !! तपू !!!"

रागभरे काँपते हाथों मुँह उठा तपन कुछ कहते हैं कि उनकी बाँहों से छिटक वह पानी में कूद जाती हैं।

"जया···जया···!"

खट-खट···

धड़कते जी काँपकर उठ बैठे। हाथ माथे की ओर गया तो गीला था। खट-खट···फिर वही आहट···

डगमगाते पाँव द्वार की ओर बढ़े और हाथ हैण्डल पर रख दिया।

वहीं हैं···वहीं हैं···वहीं लौट आई हैं···

बेटी के संग रौस होटल पहुँचे तो एक नहीं, अनेक आँखें अर्थभरे विस्मय से पिता-पुत्री को देखती रहीं। हाथ से एडना को थामे रौस सिर नीचा किए श्री के कमरे की ओर बढ़ गए। द्वार खटखटाया, उत्तर न मिलने पर आशंकित हो अन्दर आए। घुटी-घुटी दीवारों से घिरा कमरा अशुभ कटघरे-सा लगा।

पलंग पर श्री बैठे हैं और खिड़की के सामने हाथों में मुँह छिपाए तपन।

रौस न श्री की ओर बढ़े, न तपन की ओर। खड़े-खड़े बस पत्थर हो गए और पराजित विलग आँखों से बेटी को देखा किए। एडना विमूढ़-सी पिता की ओर देखती रहीं, फिर को भी संकेत न पा श्री के पास जा खड़ी हुई।

बाँह छू समूचे कण्ठ स्नेह भर पुकारा—

"श्री···!"

श्री ने सिर नहीं उठाया। झुँझलाकर हाथ से दिया—

"नहीं।"

आहत आँखों से एडना ने पापा की ओर देखा। रौ बार फिर कोई आश्वासन नहीं दे पाए।

रुलाई रोक एडी कुछ देर खड़ी-खड़ी सोचती र कुछ भी न समझ पा तपन के पास जा बैठीं।

धीमे स्वर में सहानुभूति जता भरे-भरे कण्ठ पूछा—

"कुछ भी खबर नहीं ?"

तपन सह नहीं पाए। बेबसी से सिर हिला आँखें एडना के मुख पर से लौटा लीं।

श्री पलंग की पाटी पर रोती-रोती आँखें रौस को देखते हैं, एडना को देखते हैं···पर किसी को पहचानते भी हैं यह जान नहीं पड़ा।

फोन की घंटी बजी। सहमी-सी एडना ने श्री की ओर देखा। दीखा नहीं कि घंटी सुनते हों। उठीं, मेज पर से फोन उठा तपन के हाथ में दे दिया और भयभीत-सी तपन के मुख पर नज़र गड़ाए रही।

तपन कान लगाए टूटे लड़खड़ाते स्वर में पूछते हैं—

"कोई उमीद नहीं···"

सुनते ही श्री उठे कि जैसे सपने में चलते हों। विवर्ण मुख तपन के पास आ खड़े हुए। तपन ने फोन नीचे रख दिया। तब रक्तहीन रूखी आँखों से श्री की ओर तकते रहे, तकते रहे, फिर विक्षिप्त-से श्री को कन्धों से झकझोर पागल-से बोले—

"तुम्ही ने···तुम्हीं ने···!"

रौस पहली बार हिले। उठकर हाथ से श्री को अलग कर तपन को सोफे पर बिठा दिया। तपन विवश-से, हारे-से रौस की ओर देखते रहे, फिर अस्फुट स्वर में कहा—

"एक ही दिन चूका और खो दिया···"

रौस पूरी आँखों तपन का सामना नहीं कर सके, नहीं कर सके। अपनी ही बेटी अपराधी की नाईं आँखों के आगे घूमती और किसी कड़ी चोट-सी छाती में धँसती चली जाती।

न होता ऐसा अशुभ। उस एक रात उनके आश्रम में रह वह ज़रूर उनसे कुछ कहना चाहती होंगी। विदा लेती वह मुद्रा एक बार फिर आँखों के आगे घूम गई।

घंटी फिर बजी। चेते। हाथ बढ़ा फोन उठा लिया। इन्सपेक्टर बागची मिलने को···आँखों के सामने मानो एक क्षण में सब घट गया। चाहा हाथ से ठेल एडना को कहीं इस कमरे से दूर छिपा दें कि बागची अन्दर आए। तेज़-तर्रार आँखों से सभी ओर नज़र मारी। पुरानी पहचान और नई जिज्ञासा से रौस के अभिवादन का उत्तर दिया और श्री को सम्बोधन कर कहा—

"मुझे दुख है तिस्ता के गहरे पानी से उन्हें ढूंढ निकाला नहीं जा सका। जीप में जो सामान पड़ा है, आपको संग चल उसकी पहचान करनी होगी।"

द्वार की ओर चले तो रौस न बेटी की ओर बढ़े, न दामाद की ओर। सहारा दे तपन को बाहर लिवा ले चले। छोटी-सी भीड़ गाड़ी के पास जमा थी। अगली सीट पर एडना के संग बागची बैठे और पीछे तपन, रौस और श्री।

वही चौरस्ता···माल···बताशिया···घूम का तिरछा गहरा मोड़ और लैण्डरोवर कालिंगपोंग की सड़क पर दौड़ने लगी। दूर-दूर हरियाली—हरियाली पर खम्भों से गड़े पेड़—पेड़ों के घने झुरमुट—दूर-दूर गहरे खड्डों में बिछी चाय की क्यारियाँ···पर श्री की आँखों को तो कुछ भी सूझता नहीं। माँ ने बार-बार चेताया था—समझाया था—"तुमने वचन हारा है, कानू, मैंने नहीं। न तेरी जगह कोई दूसरा मेरा लड़का बनेगा, न उसकी जगह बहू। सौगन्ध है मेरी कि उसे लेकर न लौटो तो···"

सिर झुकाए तपन बाहर देखने लगे। पहाड़ों पर झूलती 'रोप वे' की तारों और तारों को समेटे लोहे की चरखरी। फाँसी की-सी दीखती यही कड़ियाँ होंगी जिन्हें देख-देखकर कल नीचे उतरी होंगी। एक बार एक क्षण को···एक पल को जो जान पाते···

सीधी उतराई पर लैण्डरोवर कई सौ फुट नीचे उतर चली। तीन ओर पहाड़ों से घिरी तिस्ता और रणजीत का पानी उछलता-खलता था। पानी का विक्षुब्ध वेग पछाड़ खा-खाकर हाहाकार करता था।

बागची ने हाथ से संकेत कर एडना से कहा—

"वह सामने जो पुल दीखता है···वहीं।"

ऊँचे पहाड़ी कगारों से टकरा-टकरा रणजीत का गहरा पानी ढेरों फेन उगलता है। तड़पती हहराती तिस्ता के भँवर लहरों से गले मिलते हैं···बिछुड़ते हैं। दुर्भाग्य के-से झटे पुल पर लैण्डरोवर आ रुकी तो कोई ठंडी निर्दयी सिहरन तन-मन को कँपा गई।

"कल शाम वह यहीं सामने—यहीं खड़ी थीं।"

साड़ी में लिपटी सलोनी देह पर वही साँवरा मुख चमकता था। कन्धों पर जो पशमीने का शाल ओढ़े थीं वह उसी तरह अब भी लैण्डरोवर में पड़ा है। इस तरह कि अभी आएँगी, कोहनी टेक क्षण-भर खड़ी रहेंगी, फिर हाथ बढ़ा उठा लेंगी। शाल तले पर्स रखा है। इसे उठाएँगी, हवा में लहराते बालों की घनी छाँह वाला सिर झुका जिप खोलेंगी···

पर इस क्षण कहाँ छिपी हैं? किस किनारे के झुरमुट में से ऊपर चढ़ी आएँगी?

कल शाम यहीं खड़ी थीं। ग्रे रंग की साड़ी पर काला शाल था और पुल की मुँडेर पर कोहनी टेके अपलक-अबूझ अपने में ही खोई नीचे देखती रही थीं।

सुबह कालिंगपोंग जाती इसी जगह रुकी थीं। ड्राइवर मन-ही-मन मेम साहिब की पारखी नज़र देख खुश होता रहा। जितना देखेंगी, उतना खुश होंगी। उतना इनाम मिलेगा।

दार्जिलिंग से आ-आ कितनी ही गाड़ियाँ पुल पार कर कालिंगपोंग की ओर ओझल हो गईं। ड्राइवर ने घड़ी देखी, फिर ध्यान बँटाने को कई बार हॉर्न बजाया। वह न चौंकीं, न मुंडेर पर से मुख उठाया तो पास जा अर्ज़ की—

"हुज़ूर, कालिंगपोंग पहुँचने में देर होगी।"

वह चुपचाप गाड़ी में आ बैठीं।

होटल पहुँच गाड़ी छोड़ी नहीं। डेस्क पर नाम-पता लि
क़मरा देखा, फिर लंच ले घंटों कालिंगपोंग में घूमती रहीं।
में···बाज़ार में···चन्द्रलोक···तूरपीन···

चाय के लिए वापस होटल पहुँचीं तो गाड़ी का
चुका दिया। मनचाहा इनाम पा ड्राइवर ने सलाम कि
पीठ मोड़ी—गेट तक पहुँचा कि मिन्नत के-से स्वर में
कहा—

"ड्राइवर को रोक लो।"

सन्देहभरी आँखों देख बैरा ने सिर हिला दिया।

ड्राइवर ने मुस्तैदी से पूछा—

"हुक्म, साहब !"

वह ड्राइवर के मुख पर कुछ पढ़ती रहीं। फिर
स्वर में कहा—

"हमें लौटना है।"

होटल से निकल एक बार फिर बाजार में रुकीं। फल लिए, बिस्कुट, थरमस में पानी रखवाया और खुशी-खुशी दार्जिलिंग लौटने को फिर गाड़ी में जा बैठी।

राह में दो-चार बार चावभरे पूछा—

"हम लोग कब तक दार्जिलिंग पहुँच जाएँगे?"

"हुजूर, खाने से पहले।"

केले की कतारों में छिपे छोटे-छोटे पहाड़ी घर देखकर कहा—

"यहीं एक छोटा-सा घर होता तो···"

ड्राइवर ने आदरपूर्वक सिर हिलाया—

"हुजूर, चाहें तो कोई कोठी खरीद लें।"

वह हँसने लगी।

पहाड़ी प्रपात तले बने पक्के मोड़ पर से लैण्डरोवर नीचे उतरी तो वह चौकन्नी-सी इधर-उधर देखने लगी। कोई गन्ध लेती हों कि पहचान सकती हों। तब कन्धे का शाल उतार सीट पर डाल दिया और मीठे स्वर में आज्ञा दी—

"मुझे यहाँ उतार गाड़ी उस किनारे रोक लो।"

ड्राइवर ने हुक्म बजाया। उन्हें इस किनारे उतार गाड़ी पुल के दूसरे छोर रोक दी।

वह धीमी-धीमी चाल से टहलती हुई उधर बढ़ीं—पारदर्शी आँखों से आगे-पीछे, ऊपर-नीचे सभी ओर देखती रहीं, फिर पुल की मुंडेर पर हाथ दे खड़ी हो गईं। खड़ी रहीं, खड़ी रहीं।

आस-पास जुटे तीनों ओर के पहाड़ अँधियारे हो आए। नीचे नीले निथरे पर साँझ के रंग काँपने लगे और नेत्र थरथराने

पानी पर अँधेरे की कड़ी लीक-सा बना तिस्ता का पुल ढिठाई से पाँवों तले बिछा रहा।

गंगटोक-मेल गुज़र गई तो चिन्ता से ड्राइवर उतावला हो आया। लौट चलने की पुकार करती हॉर्न की गूंज एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैल गई। वह तब भी हिली नहीं तो हार-कर ड्राइवर पास चला आया। पाँव की आहट की, फिर आजिज़ हो कहा—

"देर होती है, अब लौटिए···।"

वह पलटीं। दोहरे अँधेरे में ड्राइवर का मुख निहार पाँव उठा लिया। फिर जाने क्या सोच प्रार्थना के-से स्वर में कहा—

"एक प्याला चाय मिल सकेगी ?"

"हुज़ूर, आगे एक छोटी हाट है—आपके लायक तो नहीं···गाड़ी वहीं लिए चलता हूँ।"

सुनकर ऐसे कि बहुत कष्ट हो, रुक-रुककर कहा—

"वहाँ तक नहीं जा सकूंगी, जी घबराता है।"

"हुज़ूर, लगातार पानी में न देखें—इसी से जी घिरता है।"

वह पुल के सुनसान में गाड़ी की ओर जाते ड्राइवर को देखती रहीं। आकृति अँधेरे में विलीन हो गई तो आँखों को दिखा—उनकी ओर पीठ किए दूर होता ड्राइवर नहीं, कोई और है—वह श्री हैं—श्री हैं···

मुंडेर पर टिकी बाँहों की ओट भरी और सिर झुका लिया। मन-ही-मन जैसे किसी की पदचाप सुनती हों—कोई पास आता है। उन्हीं हौले पाँवों—उन्हीं स्नेह-भरे हाथों आगे बढ़—तपन हैं—वहीं चले आते हैं—

तिस्ता के भयावने एकान्त में खुली बडौरी आँखों साँस

रोके राह तकती रहीं—नहीं सही कोई और, अपने तपन आएँगे···आएँगे और लहराते स्नेह से बुलाएँगे—जया ! जया !

जाने किस आवेश में काँपने लगीं। अँधियारे की जकड़ में प्राण छटपटाने लगे। गला भर आया—श्री···तपन···तपन··· लैण्डरोवर की लाइट पुल के उस पार से कौंधी कि मुंडेर पर कोई कपड़ा झिलमिलाया, एक प्राण दहला देने वाली चीख—और सब समाप्त हो गया। सब शेष हो गया।

मौके पर खड़े सन्तरी से सामान निकलवा बागची ने एक-एक कर चीजों की शिनाख्त की—

शाल—पर्स—अटैंची पाँवों की वैलरीना—

अभी-अभी वह उन पाँवों चल पास आ खड़ी होंगी—तपन की ओर देखेंगी और उन्हीं नीरभरी आँखों देखती चलेंगी, फिर मुसकराकर कहेंगी—

"जितने कोस आप उन्हें उठाए रहे हैं, उतने जन्मों में भी इसका ऋण लौटा नहीं पाऊँगी।"

फटी-फटी आँखों तपन देखते रहे—देखते चले। जी हुआ, लपककर पाँव का जोड़ा बागची के निर्दयी हाथों से छीन लें कि आँखों के आगे धुधलका सा घिर आया। फिर अँधेरा उतरा। अन्दर-बाहर पत्थर हो आया कि जैसे स्वयं ही मर गए हों और तिस्ता के पुल पर पड़ी अपनी देह को पाँच जोड़ी आँखें घूरती चली जाती हों। आवाज देनी चाही पर कोई मूक टूटा स्वर कण्ठ में घरघराहट बन रह गया।

तब सहसा जैसे जी लिए हों। दो पागल हाथों ने बागची से जोड़ा खींच लिया और आँखों से लगाए देखते चले—

कितने पल—कितने वर्ष—कितने युग—

दर्दीले हाथों एक ओर से श्री ने सहारा दिया—एक ओर रौस ने जतन से सीट पर बिठा दिया तो श्री की डबडबाई आँखों में तपन के साथ जया का मुख एकाकार हो उठा।

राह किनारे कोई अपरिचित जन लौटती इस लैण्डरोवर को शून्य भाव से देखते रहे। जिसकी साड़ी का टुकड़ा-भर ही बच सका, वह इन सबकी क्या होती होगी···क्या होती होगी···

ऊपर जाती सीधी चढ़ाई पीछे छूट गई। पहाड़ों की अँधियारी उदासी में सिर डाले चायबगान और उन पर घिर-घिर आते साँझ के राख-रंग साए। राह-किनारे बिछे काले पेड़ों की पाँत उन्हीं निराश बालों की छाँह-सी पहियों के संग-संग भागती गई, रात की निलाई आकाश के पानी पर काँपती रही औ डूबते सूरज की अन्तिम लौ धरती और आकाश की देह फलाँग कहीं अज्ञात हो गई।